

सुनिर्देश 1999

साहित्य रूपरेखा

आजकल

साहित्य एवं संस्कृति का मासिक

खजुराहो:

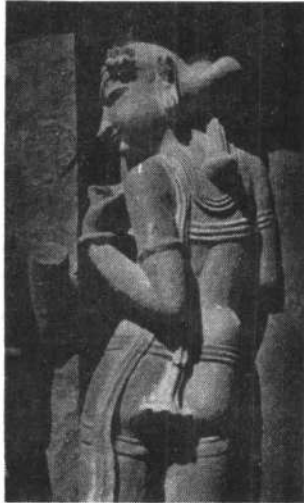
हजार वर्ष की शिल्प-यात्रा



लेख

8. खजुराहो : शिल्पयात्रा के हजार वर्ष

भारतीय मध्यकालीन इतिहास में खजुराहो अपने गौरवमय स्थापत्य एवं मूर्तियों के लिए विश्वविख्यात है। अपने निर्माण के एक हजार वर्ष पूरे करते ये अनूठे मंदिर चंदेल शासकों की अद्वितीय देन हैं। मानवीय प्रेम और आध्यात्मिक सौंदर्य के कारण पर्यटकों से साक्षात् करती रम्य-रमण प्रतिमाएं लाखों यात्रियों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। प्राचीन काल में खजुराहो एक वैभवशाली नगर था। अपनी सुख-समृद्धि, धन-धान्यपूर्ण क्षेत्र की आर्थिक समृद्धि ने कलाकारों को आकर्षित करके कलात्मक विकास में अपना योगदान दिया। खजुराहो के मूर्तिशिल्प की विषयवस्तु और रूपांकन का विवेचन कर रहे हैं **राम स्वरूप 'पल्लव'**



12. खजुराहो में नारी के विविध स्वरूप

खजुराहो मंदिर के निर्माण को एक हजार वर्ष पूरे हो गए हैं। इसे 'चंदेल कला' के नाम से भी जाना जाता है। खजुराहो-मंदिरों में नारी-अंकन का विवरण दे रहे हैं **दीपक कुमार सिन्हा**

14. भारतीय शिल्पियों का चमत्कार

खजुराहो मंदिरों का निर्माण नौवीं और ग्यारहवीं शताब्दी के बीच चंदेल नरेशों ने किया। दो सौ वर्ष की इस अवधि के दौरान उन्होंने कलापूर्ण, भव्य और मनोहारी पिचास्सी मंदिरों का निर्माण कराया। इनमें से पच्चीस अभी भी मौजूद हैं। शेष कालचक्र के प्रवाह में लुप्त हो गए हैं। चंदेल नरेशों द्वारा निर्मित ये मंदिर भारतीय वास्तुशिल्प और मूर्तिकला के

अनुपम उदाहरण हैं। इन मंदिरों का परिचय दे रहे हैं **नवीन पंत**

28. समवेत : स्वरो में एकरूपता की खोज

समवेत की परिकल्पना भारतीय संगीत में नई नहीं है। समवेत संगीत के क्षेत्र में इन दिनों नए प्रयोग हो रहे हैं और इनका उद्देश्य स्वरो की एकरूपता की खोज करना है। संगीत नाटक अकादमी द्वारा आयोजित विशद कार्यक्रम पर विस्तृत चर्चा कर रहे हैं **इलाशंकर गुहा**

34. स्थापित मानकों को लांघने की चुनौती

कथाकार व उपन्यासकार शिवप्रसाद सिंह के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय **प्रदीप तिवारी** द्वारा

साक्षात्कार

36. सामाजिक सरोकारों के बिना बड़ी कृतियों का जन्म नहीं होता !

शिवप्रसाद सिंह से

कुमार विजय की बातचीत

कहानी

19. समय शेष

युगल

31. हमें क्या चाहिए!

पन्ना लाल पटेल
(गुजराती)

व्यंग्य

39. बिल में उलझा दिल

मनोहर पुरी

कविताएं

24. तीन कविताएं

अनिल त्रिपाठी

25. चार गीत

ब्रजेश भट्ट

26. दो कविताएं

नरेश चंद्र 'पुष्प'

27. जुलूस ने ककहरा

सीखा...

राजेंद्र भंडारी (नेपाली)

33. तीन गज़लें

शमशीर संग्ली

पुस्तक चर्चा

41. गीत की वापसी की कशमकश

हीरालाल नागर

स्तंभ

2. पत्र

43. समीक्षा

वर्ष : 56; अंक : 3; पूर्णांक : 657;
जुलाई 1999, आषाढ़-श्रावण - 1921

संपादक

सुभाष सेतिया

सहायक संपादक

योगेंद्र दत्त शर्मा

उप संपादक

जयसिंह

आवरण पारदर्शी : **मनीष पंत**

सज्जा : **अलका नैयर**

संपादकीय पत्र व्यवहार :

संपादक **आजकल** प्रकाशन विभाग,
पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001,
दूरभाष : 3387876, फैक्स : 3387876

E-Mail : Indiapub@nda.vsnl.net.in

संयुक्त निदेशक (अपादन) : **डी.एन. गांधी**

चंदे की दरें :

एक प्रति : 7 रुपये; वार्षिक : 70 रुपये;
दो वर्ष : 135; तीन वर्ष : 190 रुपये

चंदे संबंधी पूछताछ :

के.एस. जगन्नाथ राव

विज्ञापन व प्रसार व्यवस्थापक

पूर्वी ब्लॉक-4, लेवल-7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-110066 दूरभाष : 6105590

हमारे विक्रय केंद्र

(यहां वार्षिक चंदा जमा कर सकते हैं।)

नई दिल्ली : बुक गैलरी, पटियाला हाउस;
दूरभाष : 3387983

सुपर बाजार कनाट प्लेस,
दूरभाष : 3313308

दिल्ली : बुक शाप, पुराना सचिवालय;
दूरभाष : 2518906

लखनऊ : 27/6, राममोहन राय मार्ग;
दूरभाष : 245785

कलकत्ता : 8, एस्लेनेड ईस्ट;
दूरभाष : 2488030

पटना : बिहार राज्य सहकारिता बैंक
बिल्डिंग, अशोक राजपथ;
दूरभाष : 653823

मुंबई : कामर्स हाउस, करीम भाई रोड,
बालार्ड पायड; दूरभाष : 2612081

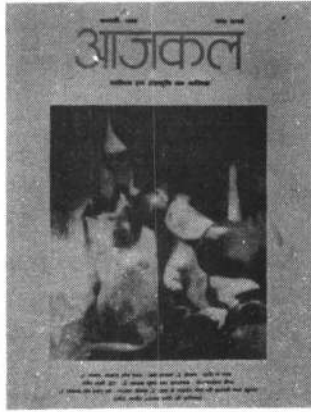
तिरुअनंतपुरम; गवर्नमेंट प्रेस के निकट;
दूरभाष : 330650

हैदराबाद : राज्य पुरातत्व संग्रहालय बिल्डिंग,
पब्लिक गार्डन; दूरभाष : 236393

चेन्नई : राजाजी भवन, बेसेंट नगर; दूरभाष
: 4917673

बंगलौर : एफ विंग, केंद्रीय सदन, कोयमंगला
दूरभाष : 553724

टाइपसेट : **दिनेशचंद्र चौधरी**



संपादकों का लचीलापन

● फरवरी अंक में कविताएं सुस्त और बिंबहीन हैं। लघुकथा 'बीमार और विकलांग' एक धुरी पर रह गई। कथानक में मूवमेंट का अभाव है। लघुकथा की प्रस्तुति संस्मरणात्मक प्रतीत होती है। फिर तथ्य को सत्य के सापेक्ष होना ही चाहिए। कहानी 'विभ्रम' कोणात्मक नहीं है। सपाटबयानी पाठकों में संप्रेषणीयता का अभाव महसूस कराती है। हिंदी पत्रिकाओं के संपादकों के लचीलेपन के कारण अधिकतर हिंदी पत्र लड़खड़ाने लगे हैं। वे पाठकों की रुचि की सामग्री नहीं दे पाते। आलेख प्रशंसनीय हैं किंतु उनमें भी निचोड़ की पकड़ का अभाव है।

—सतीश चंद्र, बस्ती

निराशा हुई

● अंक से थोड़ी निराशा हुई,

क्योंकि ज्यादातर आलेख व ललित निबंध आदि ही दीखे। ऐसी बात नहीं कि आलेख प्रभावहीन हैं, बल्कि मेरा आशय यह है कि प्रत्येक अंक में प्रायः हर मुख्य विधा को संजोया जाए। इस बार रामदेव सिंह की कहानी 'विभ्रम' अंक की एकमात्र कहानी है, जबकि कम-से-कम दो कहानियां तो होनी ही चाहिए। एक व्यंग्य भी हो और दो-चार कविताएं भी, ताकि हर रुचि का पाठक इसे खरीदकर पढ़े। प्रस्तुत अंक की सभी कविताएं औसत लगीं। हां, गोपाल दत्त देवतला और मजीद अहमद ने थोड़ा अधिक प्रभावित किया। मृदुला सिन्हा की लघुकथा अच्छी है, पर अफसोस, इसका इस्तेमाल फिलर के रूप में ही हुआ है।

—संजय सिन्हा, आसनसोल

शब्द के लिए चिंता

● 'समय, शब्द और समाज' की चिंतन परिधि में अनुप्रास से अलंकृत शीर्षक से गए शब्द-सौंदर्य को जिस परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया गया, वह प्रशंसनीय है। 'वर्तमान जीवन की विडंबनाओं को देखने-जांचने और साथ ही मनुष्य की मौलिक सिसृक्षा को अक्षत बचाए रखने के दायित्व से भी वह प्रतिश्रुत है। इस सच को उरेहने के लिए जय प्रकाश जी की शब्द-कूची कितनी गरिमामय गति से चलित

है— शब्दातीत है।

वस्तुतः शब्द साहित्य का मूल निवासी है। इलैक्ट्रानिक मीडिया में शब्द न तो उच्चतर स्थिति हासिल करता है, न सार्थक।

'किंतु ऐसे शब्द की प्रतीक्षा शायद हमेशा बना रहेगी जो संपूर्ण पृथ्वी को संबोधित कर सके और अंतिम आदमी तक उसकी ध्वनि पहुंचे।' इस आर्ष वाक्य को जय प्रकाश जी ने जिस विशाल फलक तक विस्तारित करने की युक्ति दी वह अंतिम आदमी उसे सार्थक समझ सकेगा?

निश्चय ही अमानवीयता की चरम सीमा तक पहुंचा हुआ आम आदमी उबर सकेगा! यह त्रासद है और लेखक की चिंता और संवेदनशीलता वरेण्य है। देवेंद्र शर्मा 'इंद्र' का चिंतन - 'केसव! कहि न जाय' इस चिंता को पुख्ता करने में सर्वथा सक्षम है। इंद्र जी का चिंतन एक महत्वपूर्ण निबंध है— अंक की दूसरी उपलब्धि है।

दुर्गा प्रसाद गुप्ता का सर्वेक्षण, मूल्यांकन तथा विवेचन दुनिया रोज बनती है को एक खूबसूरत मुकाम देता है। आलोकधन्वा की रचनाओं को प्रतिबद्धता से जोड़ने का प्रयास निश्चय ही सराहनीय है। लेकिन आलोकधन्वा ने प्रतिबद्ध होते हुए कभी प्रतिबद्ध लेखन नहीं

किया। प्रवृत्तिगत प्रतिबद्धता और प्रतिबद्ध लेखकीयता— दोनों दो चीजें हैं (मेरी राय में)।

आजकल का काव्य पक्ष हमेशा ही कमजोर रहा है, इसमें— न तो संपादक दोषी है और न ही पत्रों के प्रकाशक। साहित्य सृजन के काव्य पक्ष को इतना गड़ड़मड़ कर दिया गया है कि सच बातें छनकर नहीं आ रही हैं। कथक नृत्य और कथानक पर बेहतर सामग्री जुटाई गई है।

मुद्रण दोष इस अंक के लिए अक्षम्य है। जिस तरह हड़बड़ी में पेजों को समेकित किया गया है— उस दिमाग को 'कारण बताओ' नोटिस देना उचित है, क्योंकि आजकल की लोकप्रियता के उत्तरोत्तर विकास में एक सवाल बनकर टंग गया है। फोलियो और पेजों को उचित स्थान पर रखना— कला का महत्तम पक्ष है।

प्रेम शर्मा से अंतरंग बातचीत साहित्य की उत्कृष्ट विधा गीत से सरोकार रखती है और गीत की सार्थकता इस उपभोक्तावादी संस्कृति में किस हद तक बची हुई है— निश्चय ही विचारणीय है, लेकिन इसे 'आदमी का बुनियादी मुहावरा बुद्धि का नहीं, मन का है' कहकर इसके वर्तमान यथार्थ को नकारने जैसा लगता है। वर्तमान भोगवादी संस्कृति को जड़ से हिलाने की जरूरत है। इसे सिर्फ

मन के, चेतना के, संवेदना के तथा अंतरमन के हिस्से में बांट देना ठीक नहीं है। तथापि प्रेम शर्मा की बातें अंतर्मन को छूती हैं, गुदगुदाती हैं।

-राजेश, मुंगेर

समय के साथ

● अंक की खास उपलब्धि में जयप्रकाश का लेख 'समय, समाज और शब्द' रहा। सचमुच समय की सार्थकता समाज में है और समाज का समय के साथ का अनुभव शब्द के रूप में आता है। यह सही है कि प्रत्येक समाज अपने लिए अलग-अलग शब्द गढ़ता है। सभी का मूल समाज की उन्नति के साथ है। संपूर्ण पृथ्वी को संबोधित करने वाले शब्द की प्रतीक्षा रहेगी, लेकिन यह आदर्श स्थिति होगी। इस आदर्श स्थिति की प्राप्ति के लिए समाज अपने में सामंजस्य लाता है।

'मौसम मेरे शहर के' के लिए गुज़ाल जैगम को बधाई। उनके इस रोचक वर्णन ने मानो बैठे-बैठे ही इलाहाबाद की सैर के साथ उसमें डुबकी भी लगवा दी है।

-मनोज कुमार 'मनु', इलाहाबाद

शब्द संस्कार है

● अंक का महत्वपूर्ण आलेख 'समय, समाज और शब्द' वैचारिक स्थिति को गंभीर करता

है। 'शब्द' ब्रह्म है। शब्द एक ऐसा रचनात्मक कंचन है कि विज्ञान के साथ-साथ मनोविज्ञान की विशिष्ट दुनिया रचता है। शब्द है तो जीवन है। यह एक संस्कार है। शब्द चरित्र को प्रेरित करता है। शब्द-साधना सर्जक, ऋषियों एवं सांस्कृतिक व्यक्तियों, साहित्यकारों के लिए उतनी ही महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके सरोकार बड़े हैं। इसकी नींव में मनुष्य है। अब हमें बाजार संस्कृति या मीडिया के प्रकोप में शब्द की संवेदना को भूलने की साजिश से बाहर होना होगा। रामदेव सिंह की कहानी सार्थक है। कुमार रवींद्र की कविता चेतना को गुदगुदाती है। तेजराज शर्मा की कविता आशा की शुभकिरण लिए मानस पटल पर छा जाती है।

-उत्तिमा केशरी, पूर्णिया

शब्द की प्रतीक्षा

● 'समय, समाज और शब्द' पढ़ा। जयप्रकाश जी के कथनानुसार 'सभ्यता के साथ शब्द का जन्म-जन्मांतर का संबंध है' वस्तुतः सत्य ही है। पूर्व से लेकर अभी तक चाहे कोई भी विधा हो, शब्द को हमने जहां चाहा, अपनी स्वेच्छानुसार प्रयोग किया है। परंतु ऐसे शब्द की प्रतीक्षा बनी हुई है जो विश्व-बंधुत्व को एक सूत्र में बांध सके।

साथ ही 'केसव! कहि न

जाय' गोस्वामी जी की इस उक्ति के माध्यम से देवेंद्र शर्मा 'इंद्र' ने जिस सत्य को रेखांकित किया है, उससे कोई भी साहित्य प्रेमी मुंह नहीं मोड़ सकता। क्योंकि अच्छे श्रोताओं के न रहने पर अच्छे वक्ताओं की पहचान नहीं की जा सकती।

-जीतेन्द्र राम, दरभंगा

संकीर्ण समीक्षा-दृष्टि

● देवेंद्र शर्मा 'इंद्र' का आलेख पढ़ा। किसी भी रचना के लिए प्रस्तुत की गई समीक्षा संजीवनी का स्रोत बने- यह सवाल मौजूदा आलोचनात्मक और समीक्षात्मक दृष्टियों से संभव नजर नहीं आ रहा है। साथ ही ऐसी समीक्षा जो समीक्षित रचनाओं के प्रति पाठक तैयार करे, एक मौलिक, ठोस और वास्तविक दृष्टि प्रदान करे, यह अभाव खलता है। प्रायोजित, समीक्षा-टिप्पणी, खासकर जब कई स्थापित पत्रिकाओं की अपनी मनमानी रहती है, तो ऐसे में एक विशुद्ध पाठक के लिए पीड़ा का क्षण होता है। समीक्षकों के प्रति उसका विश्वास उखड़ता नजर आता है।

जय प्रकाश जी का भी आलेख शब्द गरिमा की परिपक्व दृष्टि देने में कामयाब रहा।

रामदेव सिंह की कहानी

चेतना और संवेदना के स्तर पर खास आग्रह बनाए हुए है।

-अरुण अभिषेक, पूर्णिया

स्वस्थ संकेत

● मजीद अहमद की चारों कविताओं से रू-ब-रू होना रागात्मकता के विविध पहलुओं के बीच से गुजरना रहा। तेजराज शर्मा एवं गोपाल दत्त देवतला की कविताएं भी मानव राग-विरागों से जोड़ती हैं। मुझे लगता है कि कविता में रागात्मकता की वापसी हो रही है। नई कविता की रहस्यवादी अंतश्चेतना की कुहेलिकाओं से कविता अलग हुई है। यह एक स्वस्थ संकेत है। यदि कविता को मनुष्य एवं मनुष्यता की पहचान बनना है, तो उसे राग तत्व की ओर वापस आना ही होगा।

इस अंक की उपलब्धि-रचना है देवेंद्र शर्मा 'इंद्र' का 'चिंतन' के अंतर्गत आया आलेख जिसके माध्यम से उन्होंने समसामयिक उस सारस्वत संकट की ओर दृष्टि डाली है, जो आज के साहित्य के समग्र आकलन में सबसे बड़ा बाधक तत्व है। विद्वान लेखक ने आज के रचनाकार और समीक्षक के बीच उपस्थित विश्वविद्यालयीय प्राध्यापकीय दृष्टि की परिसीमा की ओर सही इंगित किया है। भाव प्रवणता जो सहृदय समीक्षा

का आत्म-तत्त्व है, वही क्षीण हो गया है। संभवतः व्यावसायिकता के विषाणु ने हमारी सहज दृष्टि को ही विकृत कर दिया है। 'चिंतन' के ही अंतर्गत जयप्रकाश का आलेख भी वर्तमान समय में शब्द की अस्मिता के प्रश्न से रू-ब-रू करता है। लिखित-मुद्रित शब्द द्वारा वाचिक ज्ञान का अपहरण और आज उसके स्वयं के अस्तित्व का संकट, बड़े ही सटीक ढंग से इसकी व्याख्या इस आलेख में हुई है।

गुजाल जैगम का ललित लेख 'मौसम मेरे शहर के' अपनी अनूठी प्रस्तुति की दृष्टि से अविस्मरणीय बन गया है।

-कुमार रवींद्र, हिसार

भ्रम की रचना

● देवेन्द्र शर्मा 'इंद्र' की चिंता कि स्रष्टा, समीक्षक और अध्यापक के बीच लगातार दूरी बढ़ती जा रही है और इसका दुष्परिणाम साहित्य को झेलना पड़ रहा है, सहज अनुभवगम्य और नितांत अनुपेक्षणीय है। यह राष्ट्र लाखों रुपयों की योजना प्रतिवर्ष विज्ञान, छात्रवृत्ति और शिक्षा पर सिर्फ इसलिए बनाता है कि उसके आर्थिक बोझ तले दबा यहां का जन-गण-मन खुद को विज्ञापित, छात्रवृत्तिक और शिक्षित हुआ होने का एहसास पालता रहे और बदले में

'रोटी-बोटी' के लिए विश्वविद्यालयों के गलियारों में मचा हुआ शोर बाहर लाइन लगाए हुए कानों में 'वाम' और 'दक्षिण' का बीजक बनकर उनके लिए मधुमय भ्रम की रचना करता रहे।

कहानी 'विभ्रम' पठनीय और प्रशंसनीय है।

-धनेशदत्त पांडेय, कटिहार

भयावह स्थिति

● शोध का अपना एक पवित्र उद्देश्य होता है। इन पवित्र उद्देश्यों में जब राजनीति की गंदगी प्रवेश करती है तो उसका कांतिमय चेहरा स्याह हो जाता है। यह विडंबना नहीं, तो क्या है; जहां शिक्षक/ अनुसंधित्सु अध्ययन, मनन और अन्वेषण से दूर दिखते हैं। इससे भी दुखद और भयावह स्थिति तब उत्पन्न हो जाती है जब अपने को प्रतिष्ठित रचनाकार/समीक्षक/ शिक्षक कहलाने का शगल रखने वाले व्यक्तित्व मठाधीश की भूमिका में उतरते हैं, अपने वागजाल से भ्रमपूर्ण परिवेश का सृजन करते हैं जिससे किसी विरले ही उदीयमान रचनाकार/ अनुसंधित्सु का मूल चिंतन तथा प्रवृत्ति दुष्प्रभावित होने से बच पाती है।

'केसव! कहि न जाय' में देवेन्द्र शर्मा 'इंद्र' ने अंदर के सच को बड़े ही सलीके से उकेरा है

जिसमें स्रष्टा, समीक्षक और शिक्षक के बीच तारतम्य के टूटने से हुए व्यतिक्रम व उलझाव को बड़े ही दर्द से उभारा है, जिसका खामियाजा साहित्य को उठाना पड़ रहा है।

'समय, समाज और शब्द' भी अत्यंत ही प्रभावी रहा। कविताएं अच्छी लगीं।

कथक पर सामग्री विशिष्ट रही। गुजाल जैगम का ललित निबंध 'मौसम मेरे शहर के' रोचक रहा।

-बैजनाथ पांडेय, देवरिया

नग्न सच्चाई

● 'आदमी का बुनियादी मुहावरा बुद्धि का नहीं, मन का है' शीर्षक जितना सारगर्भित है, उसके गुणितीय अनुपात में सामयिक सार्थकता को स्वयं में आत्मसात किए हुए है। अवश्य ही ऐसे साक्षात्कार सौभाग्य के द्योतक हैं। प्रेम शर्मा ने रोगिष्ठ चेतना एवं फिल्म व टेलीविजन-प्रसारण के माध्यम से उस रोगिष्ठ चेतना के मवाद निकल जाने की जो बात कही है, वह वर्तमान के सतही मनोरंजक साहित्य की नग्न सच्चाई है। यही नहीं, लोकानुवर्ती रचनाओं को अवनतिपरक एवं व्यावसायिक कहा जाना समीचीन जान पड़ता है। वस्तुतः ऐसी रचनाएं चिरस्थायी नहीं हो सकती और

न ही परिष्कृत साहित्य को अभिभूत ही कर सकेंगी।

'आधुनिक हैं जल यहां के' एवं 'यही कही' कविताएं अत्यंत आकर्षक लगीं। 'समय, समाज और शब्द' तथा 'केसव! कहि न जाय' सदृश चिंतनप्रधान लेखों का प्रकाशन समृद्ध एवं उत्कृष्ट साहित्य की सजीव प्रस्तुति है।

-विष्णुदत्त पांडेय, गाजीपुर

बुद्धि बनाम मन

● साक्षात्कार के अंतर्गत प्रेम शर्मा ने चेतना के परिष्करण की बात गीति के माध्यम से कही। वस्तुतः जब हम चेतना के विपरीत जा रहे होते हैं तब गीत हमारे मन में कोमल तंतुओं को सहलाकर चेतना के सही मार्ग पर लाने का कार्य करता है। बुद्धि हमें भ्रमित भी कर सकती है किंतु अंतस की अनुभूतियों से निकला मार्ग ही बुद्धि का सही मार्गदर्शक होता है।

'लघुकथा' के अंतर्गत मुहुला सिन्हा ने मानसिक विकलांगता की कड़वी सच्चाई से रू-ब-रू कराया।

'मौसम मेरे शहर के' जैसे उत्कृष्ट ललित निबंध की लेखिका गुजाल जैगम की घाणेंद्रिय इलाहाबाद की खुराबू को पूर्णरूपेण सूंघने में सफल रही। हां, यह जरूर है कि उन्होंने इलाहाबाद की टकसाली

संस्कृति को ही शब्द-तुलिका से चित्रित किया।

कथक नृत्य पर राजेंद्र मिलन का परिचयात्मक विवरण और विजयशंकर मिश्र द्वारा बुनावट संबंधी जटिलताओं को सहज रूप से प्रस्तुत करना इस अंक की एक और उपलब्धि कही जा सकती है।

रामदेव सिंह की कहानी का पात्र मुकुल वर्मा असफल मेधावी छात्र की जीती-जागती दास्तान है। साथ ही साथ 'समाज सिर्फ चढ़ते सूरज को ही श्रद्धा निवेदित करता है'- इस कथन की भी पुष्टि लेखक ने की है।

गोपाल दत्त देवतला की पंक्तियाँ 'फिर सोचते हैं/ मसीह बनने का फायदा' अरुण कमल की कविता और मैं मारा गया/ क्योंकि मेरे नाभि में कस्तूरी थी. ' की याद दिला गई। उनकी 'घर के आगे का मंदिर' तथा कुमार रवींद्र की 'आधुनिक है जल यहां के' कविताएं भी उत्कृष्ट थी।

चिंतन के अंतर्गत जयप्रकाश जहां दुरुह किंतु सही रहे, वहीं देवेन्द्र शर्मा 'इंद्र' ने 'असाध्य को सिद्धार्थ' बनाने की बात कही। वस्तुतः जब हम आलोचक, सर्जक और शिक्षक की बात करते हैं तो हमें उन तमाम विश्वविद्यालयों/ महाविद्यालयों के परिवेश पर भी दृष्टिपात

करना होगा। दरअसल विश्वविद्यालयों आदि में संवादहीनता की स्थिति है। जब तक यह स्थिति नहीं बदलती, तब तक परिदृश्य धुंधला ही रहेगा।

देवेन्द्र जी ने लेखकों और कवियों की बात कही। उनमें भी सहज संवाद का अभाव है। मेरे विचार से उनकी स्थिति इस समय लगातार स्थूलित हो रही है। समीक्षक की तो बात ही क्या है? एक विशेष प्रकार की लाठी ले ली और लगे चलाने।

-दिनेश कुमार राय, इलाहाबाद

व्यंग्य छापें

● जय प्रकाश का आलेख 'समय, समाज और शब्द' पढ़ा। शब्द शाश्वत है, उसे कोई क्षति नहीं पहुंचा सकता। जब समग्र पृथ्वी नष्ट हो जाएगी, तब भी सिर्फ शब्द ही बचेगा।

राजेंद्र मिलन से कथक नृत्य पर काफी जानकारी मिली। गजाल जैगम ने इलाहाबाद से कुछ अलहदा ही परिचय कराया।

रामदेव सिंह की कहानी 'विभ्रम' ठीक लगी।

इस अंक में व्यंग्य की कमी अखरने वाली है। बेहतर हो अगर आप हर अंक में एक व्यंग्य दें। कहानियों की संख्या भी बढ़ाई जाना चाहिए। अगर आप साहित्यिक

गतिविधियों पर एक स्तंभ (नियमित) शुरू करें, तो यह पत्रिका संपूर्ण हो जाएगी।

-महेन्द्र कुमार कुशावाह, खरगोन

कविताएं निराशा करती हैं

● गजाल जैगम का इलाहाबाद पर रोचक वर्णन अच्छा लगा।

गोपाल दत्त देवतला की कविताएं प्रेम प्रसंग से जुड़ी होने के बावजूद मेरी कसौटी पर खरी नहीं उतरी जबकि 'अचानक बूढ़े हो गए प्रेमपत्र' ठीक कविता लगी। 'यही कहीं' व 'अंदर बाहर बसी दुनिया' कविताओं में अनावश्यक विस्तार है- जो काफी निराशा करता है।

कथक नृत्य पर लेख पढ़कर अच्छा लगा। साक्षात्कार भी ठीक लगा। प्रेम शर्मा को बधाई।

रामदेव सिंह की कहानी 'विभ्रम' से लेकर भ्रम में डालने की कोशिश है। पाठकों को दुविधा में नहीं छोड़ना चाहिए।

-अरुण शीतार, आरा

स्तरीय गीत

● कुमार रवींद्र के गीत अच्छे लगे। संवेदना के इस भयानक क्षरित युग में नवीन संवेदनाओं से संपृक्त ऐसे गीत निर्विवाद

रूप से महत्वपूर्ण हो जाते हैं। निःसंदेह यह समय की विडंबना ही है कि अब यहां के जल भी आधुनिक हो गए ! यह घूप, यह हवा, हर ज्वलंत प्रश्न और उसका हल, सब कुछ आधुनिक ! सब कुछ छद्मलीन !! यहां कवि ने अपने काल और परिवेश को ईमानदार अभिव्यक्ति दी है जो किसी जीवंत रचना की पहचान है। यहां यह भी गौरतलब है कि ऐसे में भी कवि की जिजीविषा अप्रतिहत बनी हुई है। यह कवि की प्रातिभ-चेतना है जो गीतों में प्राण-तत्त्व बोती है ! बकौल आचार्य जानकी बल्लभ शास्त्री-
बात ईमान की या कहो मान की,
चाहता गीत में मैं झलक प्राण की।

-उदयशंकर सिंह, 'उदय'

नैराश्य संगीत की धार

● निश्चित रूप से महत्वपूर्ण संक्षिप्त भावनात्मक पंक्तियों में मजीद अहमद की कविता 'वेश्याएं' रखी जा सकती है। बहुत दिनों के बाद और शायद इसमें मेरे स्वयं के रसानुभविक चित्र का भी योगदान है, इस कदर व्याकुल काव्य-पंक्तियाँ पढ़कर एक हद तक दार्शनिक मनोभूमि के ऊपर, किसी स्थूल-सी दिखती छाया को समस्या और करुणा भाव से ग्रहण करना एक नया अनुभव रहा। सिद्धांतों को जीवन में

उतारने के दर्शन का मुरीद होकर भी, विश्व मानवता के इस पक्ष से कभी स्थूल परिचय न होने के कारण, केवल भावों द्वारा उन्हें जिस हद तक जाना जा सकता है- मजीद की पंक्तियाँ उसके लिए पर्याप्त हैं। किसी विशिष्ट विवशता के कार्य-व्यापार और जीवन गति में व्याप्त नैराश्य संगीत को इन पंक्तियों ने जिस धार के साथ, अंतर्मन में उतार दिया, वह अद्वितीय है- कविता के अर्थों और शब्दों को पूरी तरह पूरा करता हुआ!

-मयंक कुमार, बंगलूर

कल तक की बातें

● अंक की गरिमा का प्रमाण है रामदेव सिंह की कहानी 'विभ्रम'! आज लोभ-लाभ के क्षेत्र में अपने रक्त गुणों की सुचिन्ता से मुक्त हो जाने का दौर तेजी से आता जा रहा है। दो सहृदय मृदुल बोल को दो दशकों से तरस रहे हैं लाचार कान भी, ऐसे परिवेश में हताश, उदास मन में नव संचार का ज्ञानवायु प्रवाहित करके मन में छाई-समाई धुंधों को मिटे तर्कों से खुरच-खुरचकर उदाहरणों से हटा-हटाकर दलदल के अतल में नई कोपलें उगाने की कोशिश करना कोई हंसी-खेल नहीं। कहानियों के बहाने ऐसा उपयोगी कार्य जो विरले कथाकार कर

रहे हैं उनकी पीठ हम नहीं, आने वाला सजग समय अवश्य ही यथथाएगा।

देवेन्द्र शर्मा 'इंद्र', विजय शंकर मिश्र, गुजाल जैगम और जयप्रकाश के आलेख अंक की गरिमा में अहम भूमिका अदा करते हैं। संपादकीय के दो शब्द का न होना मन को एक टीस से भी भर गया। इस संदर्भ में चुप्पी साध लेना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है।

-राजेंद्र आहुति, वाराणसी

और लघुकथाएं छापें

● रामदेव सिंह की कहानी 'विभ्रम' अच्छी लगी। कुमार रवींद्र की कविताएं हृदय को स्पर्श करती हैं। मृदुला सिन्हा की लघुकथा 'बीमार और विकलांग' एक लंबे अंतराल के कथानक को अपने लघु कलेवर में समेटे हुए है।

लघुकथाओं का प्रकाशन अच्छा लगा। लघुकथाओं का प्रकाशन बंद नहीं करना चाहिए।

-अतुलमोहन प्रसाद,
कोरान सराय

नए रचनाकारों को भी...

● कविताएं व कहानी 'विभ्रम' अच्छी लगी। अनुरोध है कि कविताओं की संख्या बढ़ाएं और

नए रचनाकारों को भी अपनी पत्रिका में स्थान दें। साहित्यिक समाचार प्रकाशित करना प्रारंभ करें।

-अखिलेश कुमार त्रिवेदी 'निरंकुश',
लखनऊ

कल्पना पर आधारित वर्णन

● कविता को खानों में न बांटकर आपने प्रत्येक शैली के कवि को न्यायोचित सम्मान दिया है। कहानी एक ही सही, लेकिन अपने आप को पढ़वाने वाली है। 'विभ्रम' जैसी सार्थक कहानी के लिए कहानीकार रामदेव सिंह बधाई के पात्र हैं। मृदुला सिन्हा की लघुकथा भी पाठकों तक अपनी बात ढंग से पहुंचाती है। लेख-साक्षात्कार आदि सभी ज्ञानवर्धक हैं।

इलाहाबादी होने के कारण गुजाल जैगम के 'मौसम मेरे शहर के' शीर्षक लेख के प्रति मेरा विशेष आकर्षित होना स्वाभाविक था। लेखिका ने अपने लेख में निस्संदेह इलाहाबाद का रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है। लेकिन लेख वैयक्तिक निरीक्षण या निजी अवलोकन पर कम, दूसरों द्वारा मुहैया करवाई गई सूचनाओं या फिर कोरी कल्पना के बूते पर अधिक आधारित लगता है वर्ना ए.जी. आफिस के आस-पास

नीम व पीपल के घने पड़ों के होने की बात नहीं आती उसमें। ए.जी. आफिस के आस-पास घने पेड़ों की कमी नहीं, लेकिन उनमें से लगभग तमाम के तमाम इमली के दरख्त हैं। नीम और पीपल का तो शायद ही कोई दरख्त हो उस क्षेत्र में। जो होंगे वे दपटरी भीड़ को आकर्षित नहीं करते होंगे क्योंकि ऐसे लोकप्रिय जमावड़े इमली के पेड़ों के नीचे ही लगते हैं अधिकांशतः।

मैं जानता और मानता हूँ कि एक छोटे-से लेख में किसी भी विषय पर उससे संबंधित सारी बातों को समेट पाना किसी के लिए भी संभव नहीं है लेकिन सामने की बातों की अनुपस्थिति से लेखक की नीयत और जानकारी पर शक की गुंजाइश निकल आती है। उदाहरणस्वरूप किसी भी बहाने सही, निराला और महादेवी का जिक्र करते हुए लेखिका को पंत की याद आनी ही चाहिए थी। उर्दू लेखकों की चर्चा के नाम पर शम्सुर्रहमान फारूकी की याद आई थी तो एजाज हुसैन और एहतेशाम हुसैन को किस दिल से भुलाए रखा गया।

'नय भैया अबहिन मुंह मा पान जमा हय' के हवाले से नवगीतकार उमाकांत मालवीय की याद भी अटपटी लगती है। उनका और मेरा खासा लंबा

साथ रहा है। मुझे नहीं याद पड़ता कि वह पान के ऐसे आदी भी रहे हों कभी। हाँ, दोस्तों-यारों का मन रखने के लिए मुँह में बीड़ा डाल लेना-वह भी कभी-कभार- और बात है। फिर, यदि उक्त संदर्भ में उमाकांत मालवीय की याद आ ही गई थी तो उनके साथ ऐसे क्षणों को जीने वाले कैलाश गौतम और जगन्नाथ सहाय वर्मा को कैसे भुलाए रखा जा सका!

चलिए मान लेते हैं कि लेखिका को उमाकांत का जिक्र करते हुए उनके ज्येष्ठ पुत्र यश मालवीय की याद आ गई। पर ऐसी क्या वजह रही कि अभी वर्ष-दो वर्ष पूर्व एक सड़क दुर्घटना में अकाल मृत्यु का शिकार हुए उनके मंझले बेटे और सुपरिचित कवि-कहानीकार स्व. वसु मालवीय की याद लेखिका को नहीं आ सकी।

फिर भी इलाहाबाद का एक सफल रोचक वर्णन प्रस्तुत करने के लिए गजाल जैगम को मेरी हार्दिक बधाई।

-एहताराम इस्लाम, इलाहाबाद

सुखदायी आलेख

● गजाल जैगम का ललित लेख 'मौसम मेरे शहर के' इलाहाबाद शहर का जो चित्र खींचता है वह अपने आप में संपूर्णता को, तथा प्रयाग की

गंगा-जमुनी तहजीब को समेटे हुए है। अपने शहर के बारे में ऐसा आलेख वास्तव में अत्यंत सुखदायी है। किंतु इसमें इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सीनेट हाल के नाम पर जो तस्वीर छपी है वह सीनेट हाल की तस्वीर न होकर विश्वविद्यालय के गणित विभाग का चित्र है।

कथक नृत्य पर दोनों आलेख सूचनात्मक होने के साथ-साथ इस शास्त्रीय नृत्य के सही स्वरूप को दर्शाते हैं।

रामदेव सिंह की कहानी 'विभ्रम' आज के युवा मन के ढ़ंढ को दिखाती है।

जयप्रकाश का लेख 'समय, समाज और शब्द' हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं में और अधिक तथा नवीन कार्य का अपील करता है।

-ब्रह्मदेव राम तिवारी,
इलाहाबाद

दुर्भाग्यपूर्ण

● अंक में प्रकाशित रामदेव सिंह की कहानी 'विभ्रम' अंग्रेजी शब्दों के अनावश्यक अतिक्रमण के उपरांत भी अच्छा लगी। कहानीकार द्वारा यह लिखा जाना कि नक्सलवादी आंदोलन के अंदर ग्लैमर है, पूरे कम्युनिस्ट आंदोलन व मार्क्सवाद को गाली

देने जैसा है। किसी भी क्रांति, आंदोलन अथवा संघर्ष में, ग्लैमर जैसी कौन-सी बात हो सकती है, यह विचारणीय है। अगर परिवर्तन की लड़ाई लेखक को ग्लैमर जैसी दिखती है तो यह सोच सचमुच दुर्भाग्यपूर्ण है। वैसे रचनाकार की अभिव्यक्ति पर पाबंदी नहीं लगाई जा सकती फिर भी लेखक को अपनी रचना में शब्दों के प्रयोग के प्रति सजग रहना आवश्यक है।

पुस्तक चर्चा के अंतर्गत दुर्गाप्रसाद गुप्ता दुनिया रोज बनती है के कवि आलोकधन्वा के प्रति कुछ ज्यादा ही उधार दिखाई देते हैं। आलोकधन्वा का कद अभी इतना बड़ा नहीं हुआ है कि उन्हें मुक्तिबोध, नगार्जुन, शमशेर, त्रिलोचन आदि के समकक्ष खड़ा कर दिया जाए।

-अनुराग कुवाहा, भोजपुर

खुसरो : कुछ और तथ्य

● राजकुमार सैनी जी ने अपने स्पष्टीकरण में यद्यपि संबंधित बातें साफ कर दी हैं, फिर भी कुछ बातों की ओर ध्यान आकृष्ट कराना आवश्यक समझता हूँ।

प्रभाकर प्रसाद पांडेय ने अपने पत्र में अमीर खुसरो का जन्म सन 1253 लिखा है, जबकि यू.एन.आई. फीचर द्वारा

जारी एक लेख में अमीर खुसरो की पैदाइश 1263 ई. लिखी है। यह लेख पटना से प्रकाशित दो उर्दू समाचार पत्रों में छपा है और इन दोनों में 1263 लिखा है।

दूसरी बात यह कि अमीर खुसरो केवल अनेक सुल्तानों के प्रसिद्ध दरबारी और जाने-माने सूफी फकीर ही नहीं थे। अमीर खुसरो हिंदी और फारसी के महान कवि साहित्यकार थे।

यू.एन.आई. द्वारा जारी उक्त लेख के अनुसार अमीर खुसरो ने 20 वर्ष की आयु में अपना पहला दीवान (विस्तृत काव्य संग्रह) तैयार किया था।

हिंदी में अमीर खुसरो ने रेखा, गजल, गीत, कव्वाली, कहमुकरनी, पहेलियाँ, अगल ढकोसले, दोसुखने, कौल, राग, सारंग होली खाच, ख्वाल बहादुर इत्यादि लिखे।

फारसी में उनकी लगभग 100 कृतियाँ हैं। वह भारत के बेहतरीन फारसी कवि थे। फारसी साहित्य में उनका स्थान बहुत ऊँचा अर्थात् हाफिज शीराजी और शेख सादी जैसे फारसी के गौरवशाली कलाकारों के बराबर समझा जाता है। स्वयं ईरान वाले उनकी फारसी शायरी का लोहा मानते थे।

-अता आबिदी, पटना

(विशेष पत्रिका पृ. 48 पत्र)

खजुराहो : शिल्पयात्रा के हजार वर्ष

भारतीय मध्यकालीन इतिहास में खजुराहो अपने गौरवमय स्थापत्य एवं मूर्तियों के लिए विश्वविख्यात है। अपने निर्माण के एक हजार वर्ष पूरे करते ये अनूठे मंदिर चंदेल शासकों की अद्वितीय देन हैं। मानवीय प्रेम और आध्यात्मिक सौंदर्य के कारण पर्यटकों से साक्षात् करती रम्य-रमण प्रतिमाएं लाखों यात्रियों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। प्राचीन काल में खजुराहो एक वैभवशाली नगर था। अपनी सुख-समृद्धि, धन-धान्यपूर्ण क्षेत्र की आर्थिक समृद्धि ने कलाकारों को आकर्षित करके कलात्मक विकास में अपना योगदान दिया। भव्यता की अनोखी गाथा कहते खजुराहो के मूर्तिशिल्प की विषयवस्तु और रूपांकन का विवेचन कर रहे हैं राम स्वरूप 'पल्लव'

भारतीय मध्यकालीन इतिहास में खजुराहो अपने गौरवमय स्थापत्य एवं मूर्तियों के लिए विश्वविख्यात है। अपने निर्माण के एक हजार वर्ष पूरे करते ये अनूठे मंदिर चंदेल शासकों की अद्वितीय देन हैं। मानवीय प्रेम और आध्यात्मिक सौंदर्य के कारण पर्यटकों से साक्षात् करती रम्य-रमण प्रतिमाएं लाखों यात्रियों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। भारत में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने सन 941 में खजुराहो को देखा और अपने यात्रा वर्णन में खज्जुराह शब्द का प्रयोग किया है। नगर के सिंहद्वार पर खजूर के दो वृक्षों के कारण इसका प्रारंभिक नाम खजूरवाहक रहा जो कालांतर में 'खजुराहा' हो गया। अलबरूनी भी सन 1031 में यहां आया और अपने यात्रा संस्मरण में इस स्थान को खजुराहा नाम दिया और एक झील के किनारे बने मंदिरों का उल्लेख किया है। प्राचीन काल में खजुराहो एक वैभवशाली नगर था। अपनी सुख-समृद्धि, धन-धान्यपूर्ण क्षेत्र की आर्थिक समृद्धि ने कलाकारों को आकर्षित करके कलात्मक विकास में अपना योगदान दिया।

चंदेल साम्राज्य के शासक अपने को चंद्रमा की संतान मानते थे। बनारस के राजपुरोहित की विधवा बेटी हेमवती अत्यंत सुंदर और चारुसर्वांगी थी। एक रात्रि में जब रति झील में वह स्नान कर रही थी तो चंद्रदेव ने धरती पर उतरकर हेमवती का आलिंगन कर लिया। हेमवती और चंद्रमा के असाधारण मिलन से जो संतान हुई उसका नाम चंद्रवर्मन रखा गया। यही चंदेलों के आदि पुरुष थे। चंद्रवंशी चंदेल शासकों में ननुक (825-40 ई.) एवं हर्षदेव (905-25 ई.) प्रारंभिक स्वतंत्र शासक थे। इनके उत्तराधिकारी पुत्र यशोवर्मन (925-59 ई.) ने लक्ष्मण मंदिर की स्थापत्य संरचना में अपना योगदान दिया। यशोवर्मन के बाद राजा धंग (950-1008 ई.) स्थापत्य कला के प्रगाढ़ प्रेमी के रूप में विख्यात हुए और अपने शासनकाल में विश्वनाथ मंदिर (1002 ई.) और पार्श्वनाथ

जैन मंदिर बनवाए। राजा धंग के गुरु वासवचंद्र जैन थे, इसी प्रभावानुरूप पार्श्वनाथ जैन मंदिर बनवाकर उन्हें सादर समर्पित किया। धंग के बाद राजा गंड (1008-17 ई.) ने भी मंदिर निर्माण की परंपरा में देवी जगदंबी और चित्रगुप्त (सूर्य मंदिर) स्थापत्य में योगदान दिया। चित्रगुप्त मंदिर में भगवान सूर्य की पांच फुट ऊंची प्रतिमा को स्थापित किया।

चंदेल शासकों में सर्वाधिक शक्तिशाली, ख्यातिप्राप्त कला-प्रेमी-संरक्षक, शासक विद्याधर (1017-29 ई.) ने खजुराहो के 'कंदरिया महादेव मंदिर' पर अपार धनराशि खर्च करके एक सर्वाधिक भव्य, विशाल एवं श्रेष्ठतम स्थापत्य को साकार रूप दिया। यह मंदिरों की मुकुटमणि है। कंदरिया, कंदर्पी का विकृत रूप है जो कि कामदेव का दूसरा नाम है। मंदिर की भित्तियों पर आदमकद नौ सौ रूपाकृतियां अपनी ओर आकर्षित करती हैं जिनमें काम की तन्मयता और ईश्वरीय प्रेम दोनों ही अपनी चरम सीमा पर अभिव्यक्त हुए हैं। कामासक्त मिथुन प्रतिमाओं की भावपूर्ण मुद्राओं के बीच पारस्परिक रमण-व्यापार इतनी कुशलता से प्रदर्शित किया गया है कि कामोत्तेजक प्रतिमाएं लालित्य और अनुराग से परिपूर्ण दिखाई पड़ती हैं। देवी-देवताओं की मनोहारी रूपछवि, शंख फूंकती नारी, अपने देहांतों का शृंगार करती नायिका, अंगड़ाई लेती सुंदरियां, प्रेमपत्र लिखती नायिका, आलिंगनबद्ध रम्य मिथुन यत्र-तत्र दिखाई पड़ते हैं। गज, अश्व, वृश्चिक, वानर, शुक आदि पशु-पक्षियों का अनुराग भी कलाकार द्वारा अभिव्यक्त हुआ है।

विद्याधर के उत्तराधिकारियों ने मंदिर एवं मूर्तिकला को संरक्षण दिया, जिनमें राजा विजयपाल (1029-51 ई.) एवं राजा कीर्तिवर्मन (1070-98 ई.) तथा मदन वर्मन (1129-63 ई.) ने खजुराहो के वामन मंदिर, आदिनाथ मंदिर, जवारी मंदिर, दूलादेवी मंदिर एवं चतुर्भुज मंदिरों का निर्माण करवाया।



भव्यता का प्रतीक : खजुराहो का लक्ष्मण मंदिर

चंदेल शासकों ने जिन पिचास्सी मंदिरों को बनवाया, उनमें से केवल बाइस मंदिर ही सुरक्षित हैं। पंद्रहवीं शताब्दी में सिकंदर लोधी के आक्रमण से इन मंदिर-प्रतिमाओं को आघात लगा। सहस्राब्दी से काल के प्रहार (आंधी, धूप, वर्षा, धुआ, प्रदूषण आदि) सहती प्रस्तराकृतियां अपनी समृद्ध कलात्मकता के लिए संसार भर में विख्यात रही हैं। वर्तमान में मंदिरों को तीन समूहों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम- पश्चिमी समूह के मंदिर, द्वितीय- पूर्वी समूह के मंदिर, तृतीय- दक्षिणी समूह के मंदिर। प्रथम समूह में बारह मंदिर प्रमुख हैं, जो कि वैष्णव, शैव, शाक्त और सौर संप्रदाय में आस्थावश निर्मित किए गए। इस मंदिर-समूह में खजुराहो का सबसे प्राचीन चौंसठ योगिनी मंदिर है, जो 800 ई. से भी प्राचीन माना जाता है। इसके अतिरिक्त कंदरिया महादेव मंदिर, लाल गुआन महादेव मंदिर, मतंगेश्वर महादेव मंदिर, देवी जगदंबा मंदिर (पार्वती), चित्रगुप्त (सूर्य) मंदिर, मृत्युंजय महादेव मंदिर, विश्वनाथ तथा नंदी मंदिर, लक्ष्मण-रामचंद्र अथवा चतुर्भुज मंदिर, महादेव मंदिर, पार्वती मंदिर एवं वराह मंदिर हैं।

पूर्वी समूह के मंदिरों में मुख्यतः हनुमान मंदिर, ब्रह्मा मंदिर, वामन मंदिर, कांगड़ा गढ़, जवेरी मंदिर, हिंदू मंदिर हैं, शेष तीन मंदिर घंटाई मंदिर, आदिनाथ मंदिर एवं पार्श्वनाथ जैन मंदिर हैं। दक्षिण समूह में मुख्यतः दो मंदिर हैं- दूल्हादेव मंदिर (शिव) व जातकारी मंदिर।

चौंसठ योगिनी मंदिर इस कालखंड का सबसे प्राचीन मंदिर है। खजुराहो में कौल कापालिकों और वाममार्गियों के पंथ का प्रभाव बढ़ रहा था जो शक्ति की प्रतीक योनि के उपासक थे। वामाचार की पूजा में पंच मकारों (मुद्रा, मत्स्य, मांस, मदिरा और मैथुन) की व्यापकता बनी

रही, जिसका प्रयोग साधक और कपालवनिता अपनी आनुष्ठानिक क्रियाओं और मनोरथ दैहिक सुख की परस्पर पूर्ति के लिए, विभिन्न आसनों द्वारा रतिचक्र महोत्सव मनाते थे। इसी प्रभावानुरूप खजुराहो में पंच मकार सेवन एवं रतिचक्र महोत्सव के अनेक दृश्य हैं, जिनमें उपासना और कामकला की सुखद अनुभूति हुई है।

मानवीय प्रेम और आध्यात्मिक सौंदर्य की समृद्ध परंपरा का निर्वाह करती रूपाकृतियों ने कलात्मकता के शिखर को छुआ है। जीवन की समग्रता को रूपशिल्प के माध्यम से अभिव्यक्त करते हुए शिल्पाचार्यों ने पशुगमन, समलैंगिकता एवं सामूहिक संभोग को भी नहीं छोड़ा। कामुक प्रतिमाओं की संख्या भले ही कम (लगभग दस प्रतिशत) रही हो, परंतु उन्होंने निडर होकर बिना किसी कुंठा और पाखंड के साथ काम-अभिव्यक्ति की है। जहां भी सुरत-संघर्ष दर्शाया है वहां स्त्री-पुरुष दोनों ही प्रतिपूरक एवं आनंदोपभोग में व्यस्त दिखाई देते हैं। कामुक प्रतिमाएं मुख्यतः लक्ष्मण मंदिर, विश्वनाथ मंदिर एवं कंदरिया महादेव मंदिर पर उत्कीर्ण की गईं। इसके विपरीत चतुर्भुज मंदिर पर मिथुन प्रतिमाओं का अभाव दिखाई पड़ता है।

खजुराहो कालखंड से पूर्व, वैदिक काल में भी लिंग-पूजा और योनि-पूजा होती थीं। जननेंद्रियों की उपासना का प्राचीन सभ्य समाज में अत्यधिक प्रचार-प्रसार था और यह सुदृढ़ परंपरा खजुराहो के बाद तक चलती रही। खजुराहो से काफी पहले वात्स्यायन ने चौथी शताब्दी में इसकी बेझिझक चर्चा की। महाकवि कालिदास ने शिव-पार्वती के काम व्यापार की कथावस्तु से अभिप्रेरित होकर कुमार संभव कृति की रचना की। हरिवंश पुराण (783 ई.), शिल्प प्रकाश एवं राजा भोज (1011-55 ई.) की समरांगण सूत्रधार की रचना में मध्ययुगीन शिल्प और मंदिर

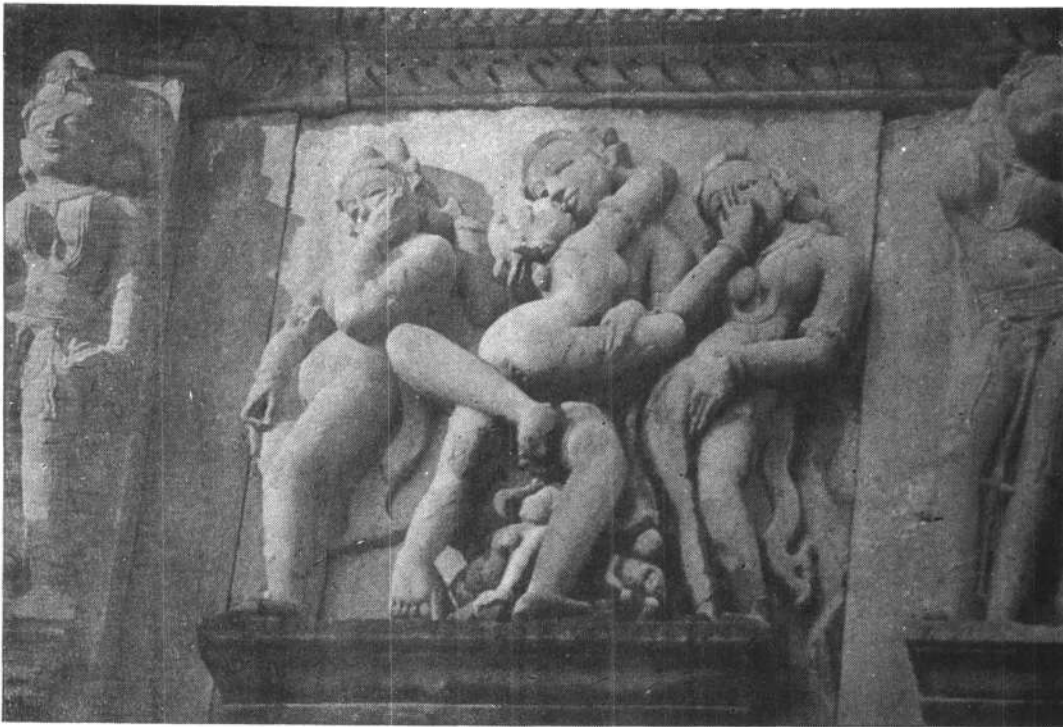
स्थापत्यों पर काम-प्रतिमा निर्माण के प्रमाण मिलते हैं। कामसूत्र के विविध दैहिकासन एक युग से दूसरे युग तक पहुंचते रहे। जिन कामासक्त, उत्तेजक मुद्राओं का वर्णन वात्स्यायन ने किया; शिल्पाचार्यों ने आसानी से संभव, असंभव एवं कष्टप्रद काम-मुद्राओं को प्रदर्शित किया।

खजुराहो की संपूर्ण मूर्तिकला को विषयवस्तु के आधार पर मुख्यतः पांच भागों में बांट सकते हैं। प्रथम वर्ग में देवी-देवताओं की वे प्रतिमाएं हैं जो मंदिर के गर्भगृहों में स्थापित चारों ओर से कोर कर बनाई गई हैं जिनमें प्रभामंडल की आलौकिक छवि दिखाई पड़ती है। पूजा के लिए प्रतिष्ठित गर्भगृह की देव-प्रतिमाओं में दिव्यता का समावेश किया गया है, जिनमें शिव, विष्णु, सूर्य, गणपति, दुर्गा, महिषासुरमर्दिनी, एवं जैन तीर्थंकरों की मूर्तियां प्रमुख हैं। इन प्रतिमाओं के साथ ही पृष्ठभूमि में सहायक देवी-देवताओं की मूर्तियां बनाई गई हैं जिनमें राम, विष्णु, बलराम, शिव, काम, ब्रह्मा एवं शक्ति सहित ब्रह्मा रैवंत, हनुमान, गणेश व अष्ट-वसुओं को भी यथास्थान उत्कीर्ण किया गया है। जैन मूर्तियों में ऋषभनाथ और पार्श्वनाथ की सर्वाधिक मूर्तियां उत्कीर्ण की गईं, इसके बाद महावीर, नेमिनाथ, शांतिनाथ तथा अन्य जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाएं भी उत्कीर्ण की गईं। सुपार्श्वनाथ सातवें तीर्थंकर एवं पार्श्वनाथ तेइसवें तीर्थंकर पांच और सात सर्पकर्णों के छत्र द्वारा सुशोभित हैं। खजुराहो की दुर्लभ प्रतिमाओं में सिंहवाहिनी गजलक्ष्मी नरसिंही (चतुर्भुज मंदिर) का अंकन प्रतिमा लक्षण की दृष्टि से विशेष स्थान रखती है। संघाट प्रतिमाओं के अंतर्गत अर्द्धनारीश्वर, हरहर, हरिहर पितामह एवं हरिहर हिरण्यगर्भ की प्रतिमाओं में समन्वित रूपांकन द्रष्टव्य है।

द्वितीय वर्ग में, सहायक देवी-देवताओं को मंदिर-जंघा, मुख्य रथिकाओं तथा प्रवेश-द्वारों पर सुसज्जित किया गया है। इनमें विद्याधरों, गंधर्वों, नागों, गणों, अष्ट दिग्पालों की प्रमुखता है। अधिकांशतः प्रवेश द्वारों पर मकरवाहिनी गंगा तथा कूर्मवाहिनी यमुना को दर्शाया गया है। कुबेर, ईशान, वरुण, वायु, यम, निऋति, इंद्र, अग्नि, शक्ति के विविध रूपों में महिषमर्दिनी, सरस्वती, लक्ष्मी, चामुंडा, पार्वती, सप्त मातृकाओं में उत्कर्ष शिल्पांकन एवं लालित्यपूर्ण अभिव्यंजना अभिव्यक्त हुई है। लक्ष्मण मंदिर पर युग्म विद्याधरों की प्रतिमाएं और आदिनाथ मंदिर पर विद्याधरों की आकाशचारी प्रतिमाएं हैं। विश्वनाथ मंदिर में सुरभि त पुष्पमाल लिए गंधर्व-मिथुनाकृतियां एवं किन्नर-किन्नरियां अपने मनोहारी रूप को प्रदर्शित करती हैं। जैन यक्षी अंबिका की दो प्रतिमाएं (पार्श्वनाथ जैन मंदिर), पद्मावती यक्षी एवं कंदरिया महादेव की नागकन्या की दैहिक संरचना में प्रवाहपूर्ण संतुलन, सिर के ऊपर फैला सर्पफण-सा छत्र और कटिमेखला की आलंकारिक छवि में चारुता प्रदर्शित है।

तीसरे वर्ग में सुर-सुंदरियों के सौंदर्य भाव को सहज मनोभावों द्वारा उत्कीर्ण किया गया है। नारी की कमनीय दैहिक रूपछवि को प्रस्तुत करती प्रस्तर-प्रतिमाएं दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। नारी-पुरुषों की अनेकों प्रणयबद्ध मिथुन प्रतिमाएं हैं, जिनमें अधिकांशतः हाथों को एक-दूसरे के कंधों पर रखा गया है। पारस्परिक प्रगाढ़ अलिंगन में व्यस्त युगलों के संभोग जनित अनुभावों का प्रदर्शन हुआ है। पार्श्वनाथ मंदिर में-नूपुरपादिका, नयनों में अंजन लगाती, पैर से कांटा निकालती, वीणा-वंशीवादन, पैरों में महावर रचाती, शिशु को दुलराती, पत्र लिखकर अपने मनोभावों को प्रदर्शित करती हैं। इसी प्रकार कंदरिया महादेव मंदिर

में नेत्र बंद किए शांत भाव में खड़ी दो अप्सराएं, दर्पण में अपने रूप-सौंदर्य को निहारती, सद्यःस्नाता अपनी भीगी केशराशि से जल निचोड़ती, अपने पीवर स्तनों को स्पर्श करती, नाग सुंदरी की आकर्षक प्रतिमा में मानवीय सौंदर्य विशेष रूप से उभरा है। लक्ष्मण मंदिर की पश्चिमी भित्ति पर अलसकन्या अंगड़ाई लेते दर्शाई गई है। इसके अतिरिक्त शंख फूंकती, शुक क्रीड़ा, कंदुक क्रीड़ा, उचककर भित्ति-संरचना करती (चित्रांकन) नवयौवना को उत्कीर्ण किया गया है। दूलादेव मंदिर में बीस चारुसर्वांगी शाल भंजिकाएं हैं, जो अपनी



जगदंबा देवी के मंदिर में विशेष रूप से तराशी गई देव-प्रतिमाएं

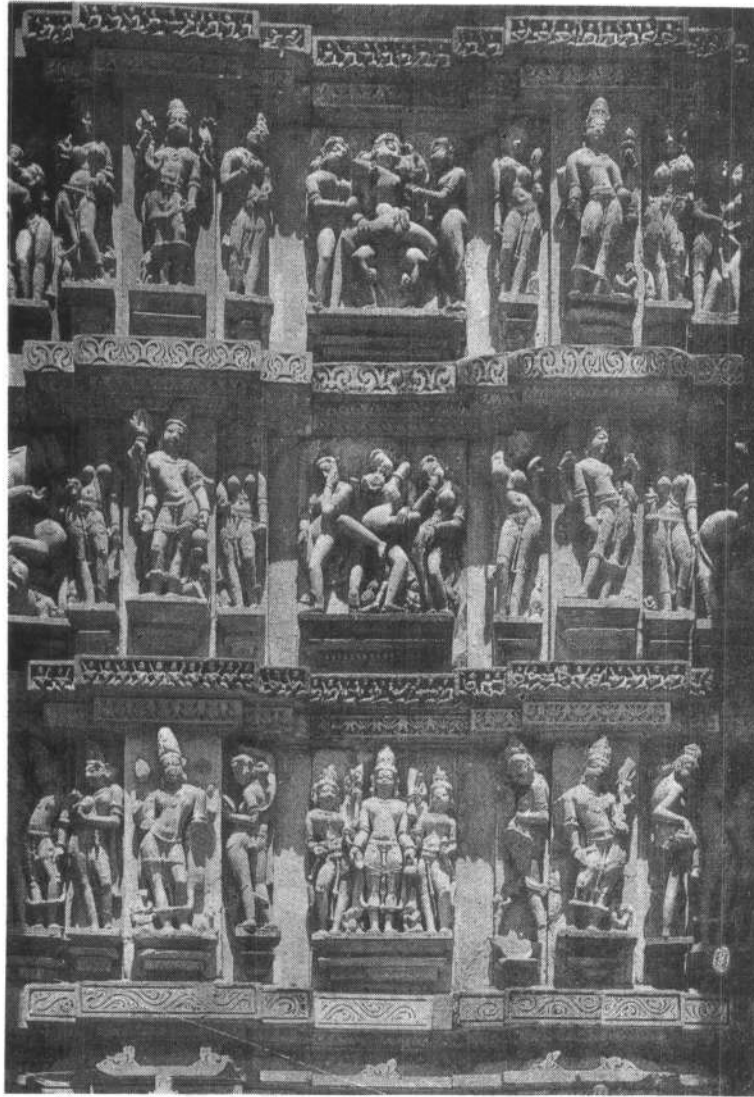
भाव-भंगिमाओं व अंग-प्रदर्शन द्वारा विलासिनी तरुणियों के मांसल सौंदर्य को अभिव्यक्त करती हैं।

खजुराहो में कामशास्त्र के संभोगजनित अनुभावों को प्रस्तर शिल्प में मुखरित किया गया है। कामसूत्र में वर्णित जिन कामासक्त, उत्तेजक तथा यौनकर्मों की मिथुन मुद्राओं का वर्णन मुनि वात्स्यायन ने किया, शिल्पाचार्यों ने आसानी से ग्रहण कर लिया।

खजुराहो की विलासिनी सुंदरियों के कमनीय उत्तेजक देहांगों में पूर्णतः समर्पण-भाव है। प्रणयरत मैथुनकृतियों में पुष्ट वक्ष, विस्तृत नितंब, सुश्रोणी विवस्त्र जघनाओं में भारतीय नारी-सौंदर्य अपूर्व है। सौम्यतापूर्ण मुखमुद्रा पर मंदस्मित चेष्टाओं का प्रदर्शन करने में शिल्पकार का प्रयास पूर्णतः सफल रहा है।

शिल्पाचार्यों का रसिक मन नारी के दो भागों पर अत्यधिक आकर्षित हुआ है—पीवर स्तन और नितंब। इन दोनों देहांगों को आकर्षक बनाने के लिए कलात्मक आभूषणों का मंडन करके, कंचन-भार से लाद दिया। नारी वक्षों को सुशोभित करते कंठाभरणों में मुक्तावली की माला, महाहार, पीवर स्तनों पर दो से सात लड़ी की मणिमालाएं, उत्पलकर्षिक माला, मरकत मणियों का हार, छोटी-छोटी रत्नमणिका, लंबहार, रानीहार, बड़े-बड़े मोतियों का तारहार, हारशेखर, हिमधवल माला, स्वर्ण का एक लड़ा हेमसूत्र कंठहार, चंद्रहार, कंठसिरी, गजमोती का हार, एकावली और कई लड़ियों की मालाओं ने खजुराहो के प्रस्तर शिल्पों को आकर्षक रूप प्रदान किया। तदुगुण सर्वांगाभूषणों (सोलह शृंगारों) ने नारी की सौंदर्य-चेतना को प्रभावित किया। सुश्रोणी वनिताओं के सघन-पृथुल नितंब और कटि प्रदेश को आकर्षक बनाने के लिए करधनी, मेखला, विलास-मेखला, हेम-मेखला, कंचनकांची, किंकिणी, रशना आदि लोकप्रिय आभूषणों द्वारा दैहिक विमंडन किया गया। लालित्य और काव्यात्मक अभिप्रेरणा ने अंगांगाच्छादित करके सुंदरियों को स्वर्ण-भार से आच्छादित कर दिया।

चतुर्थ वर्ग की प्रतिमाओं में धर्म और लौकिक जीवन प्रदर्शित



खजुराहो के विश्वनाथ मंदिर का अद्भुत मूर्तिशिल्प

हुआ है जिनमें पारिवारिक, सामाजिक, युद्ध-आखेट, उपदेशक, गुरु-शिष्य, नट, संगीतज्ञ, पशुपालक, श्रमिक, कुम्हार, अश्व, गज, नर्तक-नर्तकियों और शाल भंजिकाओं का विविध रूपांकन उत्कीर्ण किया गया है। पंचम वर्ग में पशु-पक्षियों द्वारा विविध ज्यामितीय अलंकरण सज्जा द्रष्टव्य है। स्वस्तिक, श्रीवत्स, पद्म, जलपात्र, जैसे मांगलिक चिह्नों को यथास्थान उत्कीर्ण किया गया है। गज और अश्वों के अतिरिक्त व्याल (शार्दूल) या पौराणिक पशु, नरव्याल, वराह, शुक इत्यादि के उत्कीर्णों में शिल्पी की हस्तदक्षता का प्रदर्शन हुआ है। मंदिर पट्टों पर विभिन्न अलंकरण सज्जा की गई है। मंदिर स्थापत्य का कोई भी भाग ऐसा नहीं है, जिस पर उत्कीर्ण कार्य न हुआ हो। मूलतः सभी मंदिरों का स्थापत्य तथा रचना शैली एक ही है। दो-तीन फुट की असंख्य प्रतिमाएं हैं, जो कि मंदिर के बरामदे, तोरणद्वार, अर्द्धमंडप, मंडप, महामंडप, अंतराल, प्रदक्षिणा पथ पर कलात्मक

स्तंभों एवं भव्य झरोखों पर सुसज्जित की गई हैं।

खजुराहो देव स्थापत्य-प्रतिमाएं गुप्तयुगीन मूर्तिकला का विकसित रूपांकन है। धर्म, कला और काम की समुन्नति के प्रतीक मंदिरों-पट्टों पर सजकर अमर हो गए। चंदेल शासकों के उत्कर्ष काल (950-1050 ई.) की एक शताब्दी में जो भी रूपांकन हुआ वह सभी सुखानुभूति से अभिप्रेरित है। श्रेष्ठ-परिष्कृत रूपाकृतियों में सुर-सुंदरियों की कामुकता, विवस्त्र सुंदरियों का भोग विलास, समर्पण-भाव की मुद्राओं में मानवीय आत्मा और दिव्य मिलन देखकर आश्चर्य होता है कि इन रम्य-रमण प्रतिमाओं की सर्जना शिल्पियों ने नहीं, वरन दिव्य प्रेमात्माओं ने की होगी। वैष्णव, शैव, शाक्त, गणपत्य, सौर, जैन संप्रदाय के अतिरिक्त कौल कापालिक, योगिनी, वज्रयानियों, वाममार्गी एवं तंत्रवादी धर्मोत्साह में पौराणिक सौंदर्य एवं काम कला के प्रतीकांकन, सांस्कृतिक सौंदर्य की निधि बन गए। □

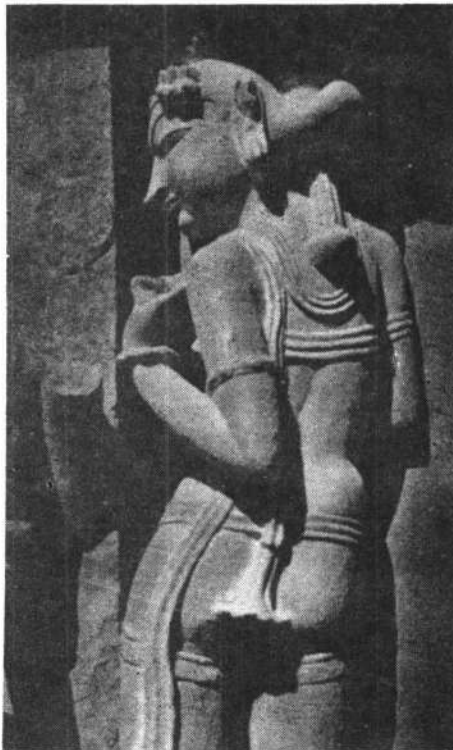
खजुराहो के मूर्तिशिल्प में नारी के विविध स्वरूप

खजुराहो मंदिर के निर्माण को एक हजार वर्ष पूरे हो गए हैं। हमारी चाक्षुष कला विरासत के लिए यह गौरव की बात है कि दसवीं शताब्दी का यह मूर्तिशिल्प कला वैभव की दृष्टि से सही-सलामत एक हजार वर्ष की यात्रा पूरी कर चुका है, जो अतुलनीय है। इसे चंदेल शासकों ने बनवाया था, इसलिए इसे 'चंदेल कला' के नाम से भी जाना जाता है। प्रस्तुत है खजुराहो-मंदिरों में नारी-अंकन का विवरण दीपक कुमार सिन्हा द्वारा

शैव, वैष्णव, शाक्त और जैन धर्मावलंबियों की आस्था का प्रतीक है खजुराहो मंदिर। इसे हम मंदिर न कहकर 'मंदिर समूह' कहें तो ज्यादा उचित होगा। इन मंदिरों की बाहरी दीवारों पर विशाल मात्रा में प्रतिमाओं का अंकन मिलता है, जिनमें उस युग की धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों की झलक बड़ी आसानी से देखी जा सकती है। शिल्पियों ने तत्कालीन समाज में फैले तांत्रिक प्रभाव से प्रभावित होकर इन मूर्तियों का निर्माण किया था, जो उन्हें देखकर स्पष्ट हो जाता है। खजुराहो मंदिरों के बाहरी भाग में भित्तिपट्टों की कई तरंगमालाओं के रूप में इन्हें उकेरा गया है। इन भित्तिपट्टों में विशेष रूप से देवताओं और देवियों की प्रतिमाएं, परिवार और पार्वदेवताओं, विद्याधरों तथा दिग्पालों, नायिकाओं, सुर-सुंदरियों और अप्सराओं तथा नृत्यरत मानवी आकृतियों के साथ लौकिक जीवन से संबंधित अनेक दृश्यों के अलावा शार्दूल जैसी पशु आकृतियों और काम-क्रीड़ा में रत आकृतियों का अंकन मिलता है। इन मंदिरों में यह मूर्तिशिल्प स्वतंत्र नहीं, बल्कि मंदिर-वास्तु के सहायक रूप में उभर कर आया है।

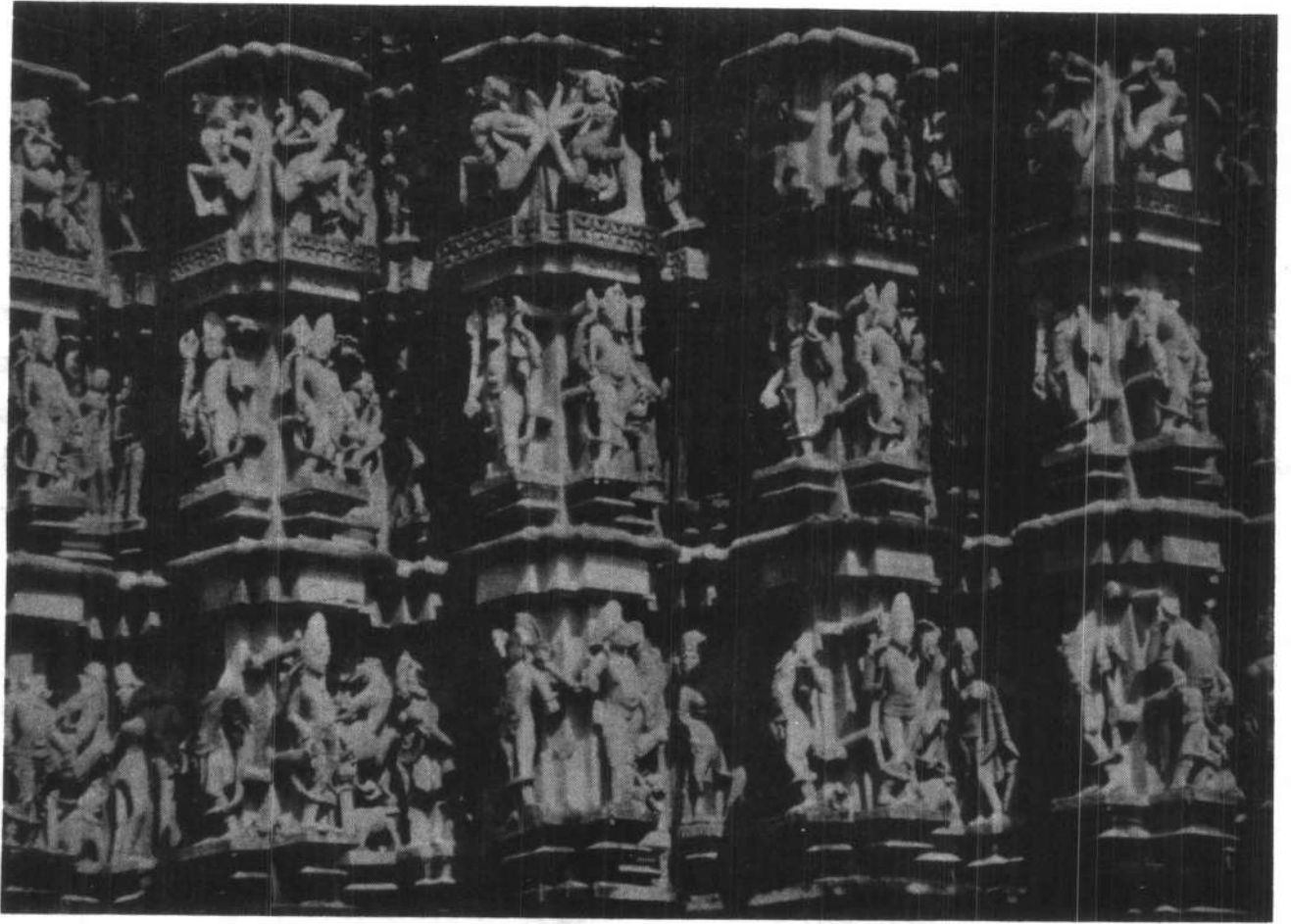
जहां तक खजुराहो मंदिरों की प्रतिमाओं में नारी स्वरूप का प्रश्न है, उसमें कई प्रकार की विविधताएं पाई जाती हैं। नारी जगत-जननी के रूप में शिव, विष्णु आदि देवताओं की

अर्द्धांगिनी बनकर आई है तो कहीं सुर-सुंदरियों और अप्सराओं के अपार्थिव सौंदर्य के रूप में विभिन्न मुद्राओं में नृत्य करती हुई तथा कभी उसे धरती की नायिकाओं के रूप में सामान्य मनोभावों और विभिन्न कामुक चेष्टाओं तथा क्रिया-कलापों से पूर्ण दिखाया गया है।



खजुराहो में उकेरी गई नारी में प्रतिमा

खजुराहो के मंदिरों में उत्कीर्ण ये नारी प्रतिमाएं विभिन्न स्वरूप शिव-शक्ति या महामाया का ही एक मूर्त रूप हैं। यहां पर मूर्तिकार ने उस महामाया को कभी छोटी बालिका के रूप में, तो कभी अपने प्रिय के समीप आने पर अपने नेत्रों या मुंह को छिपाती हुई प्रेयसी के रूप में और कभी एक प्रौढ़ विचारशील महिला के रूप में प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास किया है। इन मूर्तिकृतियों में कभी नारी अपने प्रियतम की ओर प्रेमभाव से देखती है और कभी उदासीन होकर मुंह फेर लेती है। यही नहीं, शिल्पी ने उसे विभिन्न क्रिया-कलापों में लिप्त दिखाने की चेष्टा की है, जिनमें 'अंगड़ाई' लेती, भीगे केशों को निचोड़ती, पैरों से कांटा निकालती, प्रसाधन करती, दर्पण देखती, पशु-पक्षियों से क्रीड़ा करती, वंशी बजाती, नूपुर बांधती हुई नारी को चित्रित किया गया है। अनेक हाव-भावों में अपने शरीर की गोलाई और आकार में यौवन तथा कोमलता के प्रदर्शन का बराबर प्रयास किया गया है। साथ ही वह शारीरिक अंगों के मरोड़, उनके



खजुराहो में स्तंभों पर अंकित नारी प्रतिमाएं

उतार-चढ़ाव तथा उत्तेजक भाव-भंगिमाओं आदि को व्यक्त करती है। परंतु इन सभी अवस्थाओं में उसके नेत्र मौन और कुछ झुके हुए दिखाई देते हैं। काम-क्रीड़ा के दृश्यों में भी वह पुरुष का निःसंकोच साथ देती दिखाई देती है।

कला-तकनीक की दृष्टि से खजुराहो के मंदिरों में महामाया के उपयुक्त विभिन्न स्वरूपों का अंकन बड़ा ही उच्चकोटि का तथा प्रभावशाली बन पड़ा है। अधिकांश कोर कर बनाई गई हैं। अपने अनुपम सौंदर्य के साथ वह वस्त्रों और आभूषणों से मुक्त दिखाई गई है। इनका विभिन्न मुद्राओं में अंकन करके उस क्षण को, जिसमें ये कार्यरत थीं, शिल्पी द्वारा अपनी छेनी और हथोड़ी का कुशलता से उपयोग करके उसे लय में बांधने का सफल प्रयास किया गया है।

सौंदर्य की दृष्टि से नारी प्रतिमाओं के दीर्घ सीधे अंगों के फलस्वरूप ही उनके पारदर्शी सौंदर्य में और अधिक वैशिष्ट्य निखर आया है। जहां इन मूर्तियों के नितंब शरीर के स्वाभाविक प्रतिरूपण को और उभारते हैं, वहीं बलखाती हुई तनुलता का इतना अतिरंजित प्रदर्शन मिलता है जो अस्वाभाविक-सा प्रतीत होता है। इनके गठन में कहीं से भी शिथिलता नहीं दिखाई पड़ती। इनकी नुकीली नासिका और दुड्डी विशाल जीवंत

चक्षु तथा चापदार कोमल भूकुटियां, पंखुड़ियों-सी कपोलों की रेखाओं से तीक्ष्णता स्पष्ट झलकती है, जो मध्ययुगीन कला की प्रमुख विशेषता रही है। उसी के प्रभाव के साथ ही इन मूर्तियों में गुप्तकालीन शास्त्रीय कला के तत्त्व भी दिखलाई पड़ते हैं- अर्द्धनिमीलित आंखें, अंगों की गोलाई और कोमलता तथा उनकी सजीवता आदि। इनमें अनुभूतियों के साथ विचार की अंतःशक्ति भी समन्वित हो गई है।

ऐसा प्रतीत होता है कि खजुराहो के मूर्तिशिल्पकारों ने बौद्धिक चेतना में उभरती भावनाओं की क्रियाओं और विचारों की गतियों को एक साथ इन प्रतिमाओं के चेहरों और शारीरिक अंगों में उतार दिया हो। अतः भावाभिव्यक्ति तथा सौंदर्य की दृष्टि से अध्ययन हेतु यह आवश्यक है कि इन नारी प्रतिमाओं की मुखाकृतियों का सम्मुखहीन अवलोकन न कर उन्हें एक विशिष्ट दृष्टिकोण से देखकर उनके भाव और सौंदर्य की गहनता को ग्रहण किया जाए। नारी प्रतिमाओं से गति के स्पंदन का अनुभव तथा जीवन की स्फूर्ति का बराबर आभास होता रहे, यही खजुराहो के मूर्तिशिल्पियों का मुख्य प्रयास रहा है। अपने इस उद्देश्य में वे पूर्ण रूप से सफल रहे हैं। इन मूर्तियों के अपने अद्वितीय सौंदर्य के साथ एक गहन आत्मलीनता का भाव भी परिलक्षित होता है, जो मुखाकृतियों को देखकर स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। □

भारतीय शिल्पियों का चमत्कार

खजुराहो मंदिरों का निर्माण नौवीं और ग्यारहवीं शताब्दी के बीच चंदेल नरेशों ने किया। दो सौ वर्ष की इस अवधि के दौरान उन्होंने कलापूर्ण, भव्य और मनोहारी पिचास्सी मंदिरों का निर्माण कराया। इनमें से पच्चीस अभी भी मौजूद हैं। शेष कालचक्र के प्रवाह में लुप्त हो गए हैं। चंदेल नरेशों द्वारा निर्मित ये मंदिर भारतीय वास्तुशिल्प और मूर्तिकला के अनुपम उदाहरण हैं। संयुक्त राष्ट्र शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति संगठन (यूनेस्को) ने इन भव्य मंदिरों को भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखने के लिए इसे विश्व विरासत स्थल घोषित कर दिया है। प्रस्तुत है नवीन पंत द्वारा इन मंदिरों का परिचय

खजुराहो मंदिरों का निर्माण नौवीं और ग्यारहवीं शताब्दी के बीच चंदेल नरेशों ने किया। दो सौ वर्ष की इस अवधि के दौरान उन्होंने कलापूर्ण, भव्य और मनोहारी पिचास्सी मंदिरों का निर्माण कराया। इनमें से पच्चीस अभी भी शेष हैं। इनमें से प्रमुख हैं : चौंसठ योगिनी का मंदिर, लक्ष्मण मंदिर, विश्वनाथ मंदिर, चित्रगुप्त मंदिर, कंदरिया महादेव मंदिर और देवी जगदंबा मंदिर, पार्वती मंदिर, घनताई मंदिर और नंदी मंदिर। शेष कालचक्र के प्रवाह में लुप्त हो गए हैं। चंदेल नरेशों द्वारा निर्मित ये मंदिर भारतीय वास्तुशिल्प और मूर्तिकला के अनुपम उदाहरण हैं। संयुक्त राष्ट्र शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति संगठन (यूनेस्को) ने इन भव्य मंदिरों को भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखने के लिए इसे विश्व विरासत स्थल घोषित कर दिया है।

श्रीहर्ष की मृत्यु के बाद केंद्रीय शक्ति के युग का अंत हो गया और देश के विभिन्न स्थानों में स्थानीय शक्तियां प्रबल होने लगीं। दसवीं शताब्दी में बुंदेलखंड

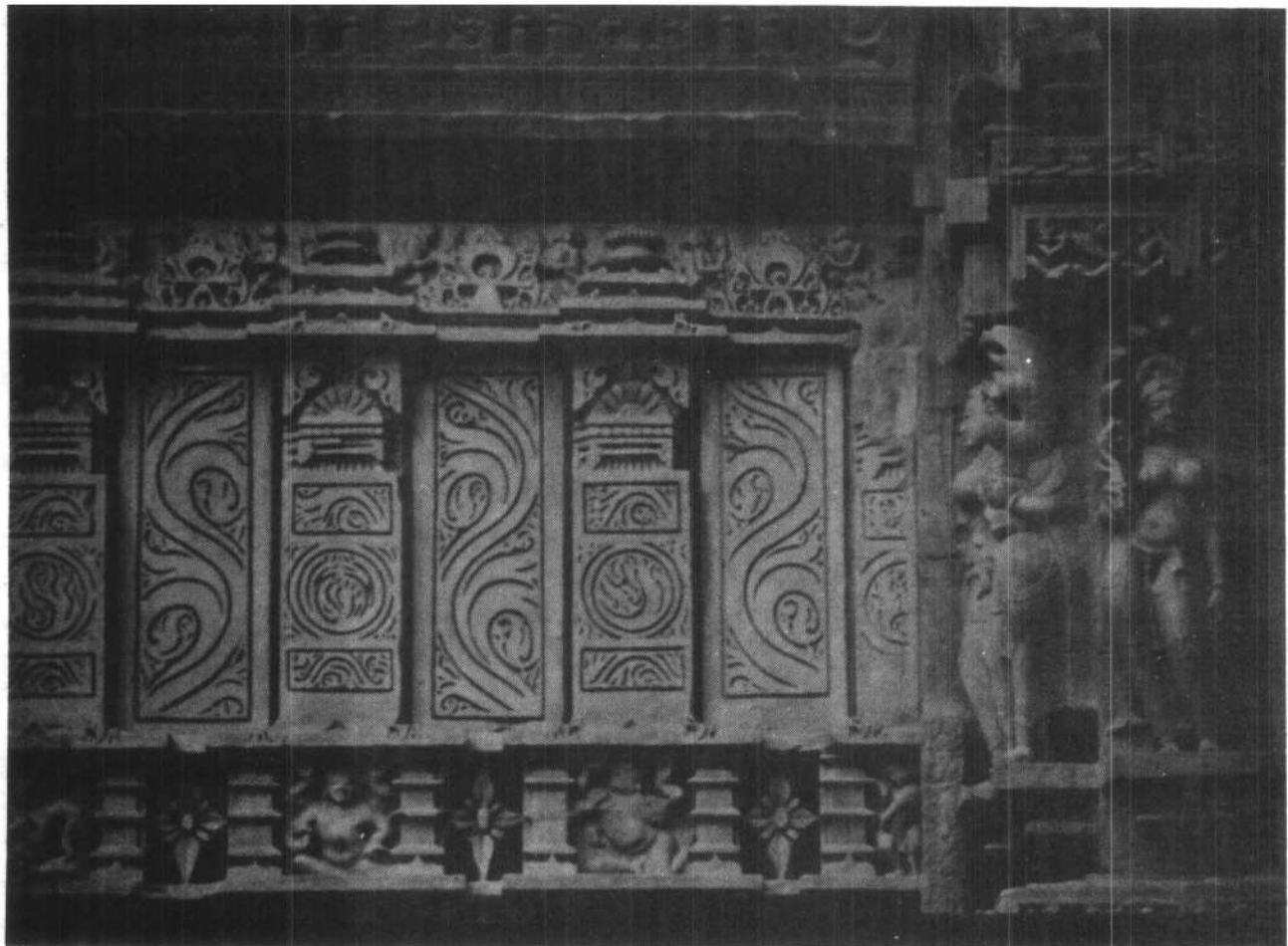


खजुराहो में एक नर-पशु प्रतिमा

क्षेत्र में चंदेल एक बड़ी शक्ति के रूप में उभरे। उन्होंने इस क्षेत्र के एक बड़े भूभाग पर अपनी सत्ता स्थापित की। उन्होंने इस क्षेत्र को कुशल और शांतिपूर्ण शासन प्रदान किया। उनका शासन काल सुख, समृद्धि और शांति का रहा। उन्होंने विशाल मंदिरों, महलों व दुर्गों का निर्माण कराया। चंदेलों की राजधानी खजुराहो थी जिसे उन दिनों जैजाक मुक्ति कहते थे। चंदेल कला, संगीत और स्थापत्य को बढ़ावा देने वाले शासक थे।

खजुराहो में वैष्णव, शैव और जैन तीनों तरह के मंदिर हैं। लेकिन इन मंदिरों की रचना में एक ही शैली का अनुसरण किया गया है। चौंसठ योगिनी, ब्रह्मा और लाल गुआन महादेव के मंदिरों को छोड़ शेष सभी मंदिर पन्ना की खानों से निकाले गए पत्थरों से बनाए गए हैं।

खजुराहो के मूर्तिकार मानव आकृतियों और मनोभावों के अद्भुत चित्रे थे। उन्होंने सभी मंदिरों के बाहरी भाग को विभिन्न भावपूर्ण मानव आकृतियों से अलंकृत किया



खजुराहो के भित्तिचित्र और प्रतिमाएं

है। खजुराहो की मूर्तियों को मोटे तौर पर पांच वर्गों में बांटा जा सकता है। पहले वर्ग में विभिन्न संप्रदायों के चोटी के देवी-देवताओं की मूर्तियां हैं। दूसरे वर्ग में परिवार के सदस्य, अनुचर और गौण देवी-देवता (द्वारपाल) हैं। इन्हें आलों या ताक में स्थान दिया गया है। तीसरे वर्ग में अप्सराओं और सुर-सुंदरियों की मूर्तियां हैं। इन्हें मंदिर की बाहरी दीवारों, खंभों और छत पर उत्कीर्ण किया गया है। घरेलू जीवन की झांकियां, पाठशाला के दृश्य, नृत्यांगनाएं और मिथुन मूर्तियां चौथे वर्ग में आती हैं। पांचवें वर्ग में पशुओं की मूर्तियां हैं— शार्दूल, सीगों वाला शेर, उस पर सवार धनुर्धारी और उस पर एक योद्धा का आक्रमण।

खजुराहो के मंदिर अन्य भारतीय मंदिरों से भिन्न हैं। वास्तव में वे मध्य भारत में विकसित विशिष्ट मंदिर शैली के प्रतिनिधि हैं। प्रत्येक मंदिर एक चबूतरे पर है जो आस-पास के क्षेत्र से कुछ अधिक ऊंचाई पर है। यह चबूतरा दो काम करता है— यह मंदिर की परिक्रमा का रास्ता बनाता है और भक्तजनों को बैठने, विश्राम करने और चहलकदमी करने के लिए स्थान प्रदान करता है।

मंदिर की मध्य छत अनेक शिखरों का आभास देती है। सर्वोच्च शिखर गर्भगृह के ऊपर है। मंदिरों के विभिन्न भाग एक

दूसरे के साथ भीतर और बाहर से जुड़े हैं। पूर्व से पश्चिम को जाने वाली एक धुरी पर बनाए गए ये मंदिर एक संपूर्ण इकाई का रूप धारण करते हैं। सभी मंदिरों में अर्द्ध मंडप, मंडप, अंतराल और गर्भगृह हैं। कंदरिया महादेव जैसे बड़े मंदिर में अतिरिक्त स्थान हैं। मंदिर को उसकी स्थिति के अनुसार पूर्वी, पश्चिमी और दक्षिणी वर्ग में विभक्त किया गया है। पश्चिमी और दक्षिणी वर्ग के मंदिर हिंदू देवी-देवताओं को समर्पित हैं जब कि पूर्वी क्षेत्र के मंदिर जैन हैं।

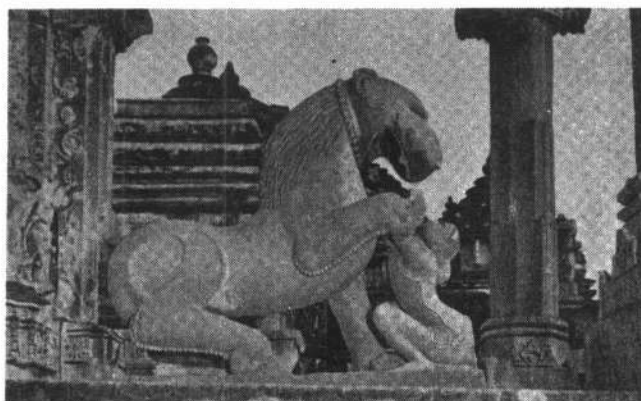
खजुराहो के मंदिर अपनी अनुपम कलात्मकता के लिए विश्व विख्यात होने के साथ-साथ अपनी मिथुन मूर्तियों के लिए विवादास्पद हैं। मंदिर में ये मूर्तियां क्यों बनाई गई हैं? कुछ लोगों के अनुसार ये मूर्तियां तत्कालीन नैतिक पतन की परिचायक हैं। इस बात में विशेष सार नहीं लगता, क्योंकि ऐसी मूर्तियां विभिन्न समय पर निर्मित देश के अन्य मंदिरों में भी पाई जाती हैं। अन्य लोगों के अनुसार ये मूर्तियां वात्स्यायन की प्राचीन रचना *कामशास्त्र* को कलात्मक रूप में सजीव पेश करती हैं। कुछ अन्य लोगों के अनुसार ये मूर्तियां मध्ययुग के उन संप्रदायों से प्रभावित हैं जो मानते

खजुराहो के मंदिर

कंदरिया महादेव और देवी जगदंबा के मंदिर एक ही चौकी पर बनाए गए हैं। कंदरिया महादेव का मंदिर सबसे बड़ा और वास्तुशिल्प की दृष्टि से सबसे प्रभावशाली है। पहले इसके चार कोनों पर चार छोटे मंदिर और थे और इस कारण यह पंचायतन मंदिर कहलाता था। कंदरिया महादेव मंदिरों की दीवारों को विभिन्न मुद्राओं वाली सौ मूर्तियों से सजाया गया है। कंदरिया महादेव मंदिर की चौकी पर देवी जगदंबा का मंदिर है। यह पहले भगवान विष्णु का मंदिर था। बाद में इसमें भगवान शिव की पत्नी पार्वती की मूर्ति प्रतिष्ठापित कर दी गई। पार्वती की यह मूर्ति काली है अतः इस मंदिर को काली मंदिर भी कहते हैं। कंदरिया महादेव मंदिर का निर्माण चंदेल नरेश विद्याधर (1017-1029) ने कराया।

विश्वनाथ मंदिर की वास्तु शैली कंदरिया महादेव मंदिर से मिलती है। इसका निर्माण भी पंचायतन आकार में किया गया है। तथापि पुराने चार मंदिरों में से केवल दो शेष हैं। विश्वनाथ मंदिर की दीवारों पर अप्सराओं, किनरियों और सुर-सुंदरियों की अनेक मूर्तियों के साथ कुछ मिथुन मूर्तियां भी हैं। इस मंदिर का निर्माण चंदेल नरेश धंग ने 1002 सन में किया।

लक्ष्मण मंदिर पहले विष्णु मंदिर था। खजुराहो के मंदिरों में इसकी स्थिति सबसे अच्छी है। यह अपने मूल रूप में सुरक्षित है। इसके चार कोनों पर स्थित



चार मंदिर भी अपने गर्भगृह और अर्द्ध मंडप के साथ यथावत हैं। लक्ष्मण मंदिर के गर्भगृह में तीन सिरों और चार भुजाओं वाली विष्णु की मूर्ति है। मूर्ति का मध्य सिर मानव और अगल-बगल के सिर नृसिंह और वाराह हैं। मंदिर के तोरण पर सुंदर नक्काशी है। मंडप की छत पर कलात्मक सजावट है। इस मंदिर का निर्माण सन 954 में यशोवर्मन ने किया।

चित्रगुप्त मंदिर को भरत जी मंदिर भी कहते हैं। इसके कुछ भाग को छोड़कर, जिसका जीर्णोद्धार किया गया है, यह अपने मूल रूप में है। मंदिर की छत की दीवारों पर पत्थर पर नक्काशी करने वालों, आखेट, गज-युद्ध के मनोहारी दृश्य हैं। गर्भगृह में प्रतिष्ठापित सूर्य की मूर्ति सात घोड़ों से जुते एक रथ पर सवार है।

खजुराहो सागर के पूर्वी तट पर ब्रह्मा का मंदिर है। प्रवेश द्वार के निकट गदाधर की मूर्ति से लगता है कि यह मंदिर भी कभी विष्णु का मंदिर रहा होगा। इस मंदिर की छत पिरामिड के आकार की है। इस मंदिर का निर्माण आठवीं-नौवीं शताब्दी में हुआ होगा।

खजुराहो के पूर्वी क्षेत्र के मंदिरों में आदिनाथ का मंदिर प्रमुख है। इस मंदिर की मूल मूर्ति गुम हो गई है और उसके स्थान पर दूसरी मूर्ति प्रतिष्ठापित कर दी गई है। इस मंदिर की विशेषता इसकी दीवारों पर अंकित विद्याधारों, हिंदू देवी-देवताओं, और नर्तकियों आदि की मूर्तियां हैं।

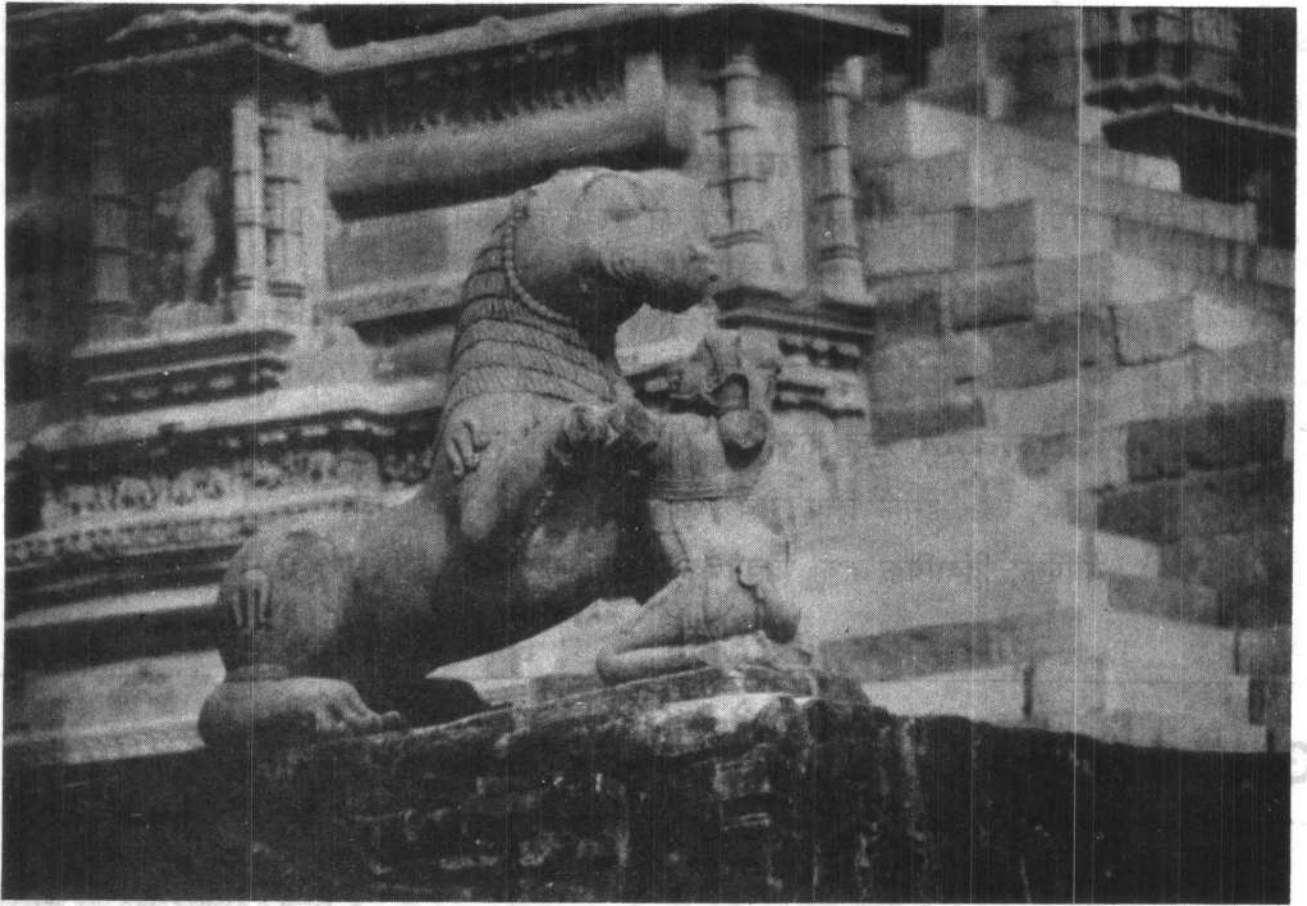
थे कि मानव मुक्ति के लिए योग और भोग दोनों जरूरी हैं। यह भी संभव है कि मंदिरों के बाहर मिथुन मूर्तियों का निर्माण लोगों को यह बताने के लिए किया गया हो कि समस्त सांसारिक इच्छाओं, विशेष रूप से विषय-वासनाओं को बाहर छोड़ें बिना मुक्ति नहीं हो सकती।

प्राचीन हिंदू विचारकों के अनुसार मानव जीवन के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी समान रूप से जरूरी हैं। उन्होंने काम को कभी निंदनीय या त्याज्य नहीं समझा। हिंदुओं के देवता भी कामदेव के प्रहार से मुक्त नहीं हैं। कामदेव अपने अनंग रूप में सभी मनुष्यों में निवास करते हैं। कालिदास ने जिस भाव से विभिन्न अलंकारों का प्रयोग करके पार्वती के अद्भुत शारीरिक सौंदर्य का वर्णन किया है, खजुराहो के शिल्पियों ने संभवतः उसी भावना से मंदिरों के बाहर मिथुन मूर्तियों का निर्माण किया है।

तथापि यह समझना भूल होगी कि खजुराहो में केवल मिथुन मूर्तियां हैं। मंदिर के बाहर उत्कीर्ण मूर्तियों में जीवन के सभी पहलुओं का मनोहारी और जीवंत चित्रण किया गया है।

एक किंवदंती के अनुसार इन मंदिरों के निर्माण के पीछे एक विचित्र प्रेम कथा है। कहा जाता है कि एक बार चंद्रमा एक पुजारी की पुत्री हेमवती पर उस समय अनुरक्त हो गए जब वह एक सरोवर में स्नान कर रही थी। उन्होंने पुजारी की पुत्री के साथ विवाह कर लिया। उनके एक पुत्र हुआ— चंद्र वर्मन। इसी ने चंदेल राजवंश की स्थापना की। एक रात चंद्र वर्मन को उसकी मां ने स्वप्न में एक ऐसा स्मारक बनाने का आदेश दिया जो मानव इच्छाओं की निरर्थकता को प्रकट करे।

इतिहास के अनुसार चंदेल प्रतिहार नरेशों के स्थानीय सामंत थे। सातवीं शताब्दी में उत्तर भारत में प्रतिहार प्रमुख शक्ति थे।



खजुराहो का एक मूर्तिशिल्प

दसवीं शताब्दी के मध्य तक चंदेल मध्य भारत क्षेत्र में सबसे प्रमुख शक्ति बन गए। चंदेलों के अंतर्गत खजुराहो उनकी राजधानी और प्रमुख सांस्कृतिक केंद्र बन गया। चंदेलों ने समीपवर्ती पर्वत शिखरों पर अनेक दुर्गों का निर्माण किया। इनमें से अजयगढ़, कालिंजर और महोबा उल्लेखनीय हैं।

चौदहवीं शताब्दी में जब आबू रिहान अल बरूनी ने महमूद गजनवी के साथ भारत की यात्रा की तो उसने जैजाक मुक्ति की राजधानी खजुराहा को एक संपन्न नगर के रूप में पाया। 1335 में जब इब्नबतूता इस क्षेत्र से होकर गुजरा तो उसने यहां के भव्य मंदिरों को साधु-संन्यासियों से भरा पाया। इन मंदिरों को दुबारा 1838 में खोजने का श्रेय ईस्ट इंडिया कंपनी के एक अधिकारी टी.एस.बर्ट को है।

खजुराहो मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले की राजनगर तहसील में है। खजुराहो सीधे रेल मार्ग से जुड़ा नहीं है। रेल यात्रियों को झांसी, सतना, हरपालपुर और महोबा उतरना चाहिए। इन सभी स्थानों से खजुराहो के लिए नियमित बसें चलती हैं। इन स्थानों पर टैक्सी का प्रबंध भी कराया जा सकता है। खजुराहो के लिए दिल्ली, आगरा और वाराणसी से नियमित विमान सेवा उपलब्ध है।

पचास के दशक के शुरू में खजुराहो एक साधारण गांव था। वहां रात बिताने के लिए कोई अच्छा विश्राम-गृह नहीं था। इक्का-दुक्का पर्यटक वहां पहुंचते थे। अब स्थिति एकदम बदल गई है। खजुराहो विश्व पर्यटक नक्शे पर सुस्थापित हो गया है। 1997-98 में वहां बीस लाख से अधिक पर्यटक पहुंचे।

ग्रामीण परिवेश में स्थित होने के बावजूद अब खजुराहो में आधा दर्जन पांच सितारा होटल, दर्जनों अन्य होटल और आधुनिक हवाई अड्डा है। विश्वभर के पर्यटकों को आकृष्ट करने के बावजूद खजुराहो अपने प्रदूषणमुक्त ग्रामीण स्वरूप को बनाए हुए है।

खजुराहो मंदिरों का निर्माण सन 950-1050 के बीच किया गया। खजुराहो के त्वरित विकास में योग देने के लिए इस वर्ष खजुराहो के इन मंदिरों की स्थापना के एक हजार वर्ष पूरे होने का उत्सव धूमधाम से मनाने का निश्चय किया गया है। ये समारोह एक वर्ष तक चलेंगे। इनका उपयोग लोगों को खजुराहो के बारे में अधिक से अधिक जानकारी देने और पर्यटकों के लिए खजुराहो को अधिक सुखद, आरामदायक बनाने के लिए किया जाएगा। खजुराहो को रेल मार्ग से जोड़ने का भी प्रस्ताव है। □

पाठकों से

आजकल : नई दरें

कागज तथा मुद्रण संबंधी लागत वृद्धि को देखते हुए हमें आजकल पत्रिका का मूल्य बढ़ाना पड़ रहा है।

अब एक प्रति का मूल्य पांच रुपये के स्थान पर सात रुपये कर दिया गया है।
आशा है, पाठक इस स्थिति में हमें सहयोग करेंगे।

आजकल प्राप्त करने का बेहतर तरीका नियमित ग्राहक बनना है।

इसके लिए नीचे दिया गया कूपन भरकर भेजें।

वार्षिक, द्विवार्षिक तथा त्रिवार्षिक चंदे की संशोधित दरें नीचे दी गई हैं।

—संपादक

आजकल का अब आप 2 व 3 वर्ष का चंदा भी एक साथ जमा कर सकते हैं

मैं आपकी पत्रिका *----- का ☐ एक वर्ष (रु. 70)

☐ दो वर्ष (रु. 135) ☐ तीन वर्ष (रु. 190) का ग्राहक बनना चाहता हूँ।**

चंदे का रु. ----- डी.डी./भारतीय पोस्टल आर्डर/

मनिआर्डर सं-----दिनांक-----संलग्न है।

हस्ताक्षर -----

नाम :-----

पता :-----

पिन :

* पत्रिका का नाम

** कृपया जितने वर्ष का चंदा जमा करना चाहें उस पर निशान लगा दें। और यह फार्म भरकर :
विज्ञापन एवं प्रसार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, ईस्ट ब्लॉक
4, लेवल-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066 के नाम भेजें। टेलीफोन : (011) 6105590

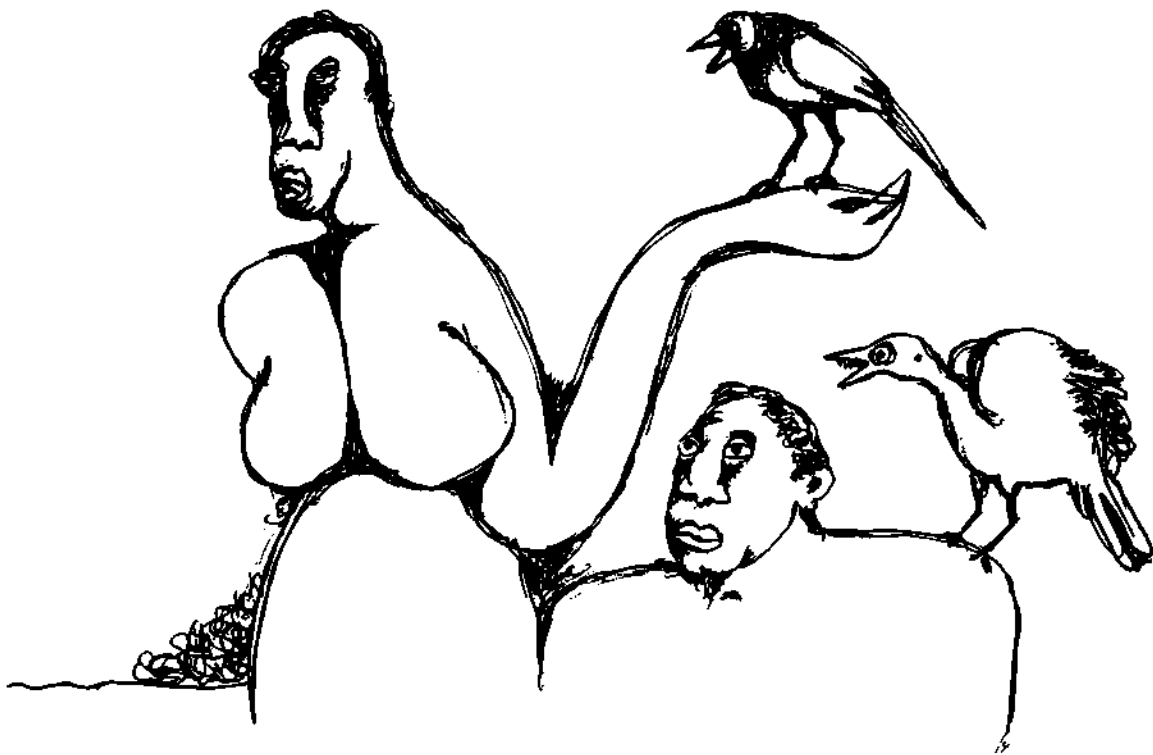
● दिल्ली से प्रकाशित हमारी अन्य पत्रिकाएं हैं : बाल भारती, आजकल (उर्दू), कुरुक्षेत्र (हिंदी व अंग्रेजी), योजना (हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी व उड़िया)। प्रत्येक पत्रिका का चंदा:

एक वर्ष रु. 70.00, दो वर्ष रु. 135.00,
तीन वर्ष रु. 190.00

● कृपया अपना चंदा डी.डी./पोस्टल आर्डर/मनिआर्डर निदेशक, प्रकाशन विभाग, के नाम बनाएं।

● पत्रिका भेजने में, चंदा प्राप्त होने के बाद, आठ से दस सप्ताह का समय लगता है। कृपया इतने समय प्रतीक्षा करें।

● किसी भी जानकारी के लिए लिखें :
विज्ञापन एवं प्रसार व्यवस्थापक,
प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लॉक 4, लेवल-7,
रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-110066



रेखांकन : राबेद गायकवाड

समय शेष

युगल

सवा सात बज चुके थे, लेकिन दूध की वैन अभी नहीं आई थी। अमूमन साढ़े छह और सात के बीच आ जाती थी और पार्क के गेट के पास लगती थी। देर के कारण ऊबे-से लोग समय की पाबंदी पर अपने मंतव्य प्रकट कर रहे थे। दशरथ बाबू हाथ में पॉली बैग लिए दो मिनट तक चहलकदमी करते रहे। फिर वह पार्क में दाखिल हुए और एक सीमेंट वाली बेंच को कंधे पर रखे तौलिए से झाड़कर बैठ गए। तभी वह वृद्धा औरत आई। दशरथ बाबू ने मुस्कराकर उसकी ओर देखा। यह आमंत्रण था कि आओ, बैठो! वृद्धा आकर बैठ गई।

इधर दो सप्ताह से यह वृद्धा भी इस बूथ से दूध लेने आती है। इंतजार में कई बार दोनों

पास-पास बैठे हैं। अक्सर यह हुआ है कि अगर वह पहले से आई होती है और दशरथ बाबू देर से पहुंचते हैं, तो उन्हें देखकर वह आदरपूर्वक खड़ी हो जाती है। फिर दोनों बैठ जाते हैं। या दशरथ बाबू पहले से बैठे होते हैं, तो उसे देखकर थोड़ा खिसककर उसके लिए जगह बना देते हैं। इस शिष्ट औपचारिकता के अतिरिक्त दोनों में कभी कोई बात नहीं हुई। दोनों में से कोई एक-दूसरे के बारे में कुछ नहीं जानता। कालोनी में आते-आते दोनों अक्सर एक-दूसरे को देखते रहे हैं।

वृद्धा के बैठते ही वैन आ गई और इंतजार में बैठे लोग आवाली में वैन की ओर बढ़ गए। दूध लेकर जब दशरथ बाबू आगे आए, तो देखा, वृद्धा पांव की हवाई चप्पल घसीटती जा

रही है और चप्पल पांव से निकल-निकल जा रही है। दशरथ बाबू के मुंह से अनायास ही निकल गया-"क्या हुआ?"

वृद्धा ने रुआंसी होकर दशरथ बाबू की ओर देखा-"यह चप्पल..."

दशरथ बाबू ने देखा, चप्पल पुरानी है, जिस पर अंगूठे और एड़ी घिसने के दाग हैं। उसका फीता टूट गया था। उन्होंने कहा-

"इसे पहनकर तो जाया नहीं जा सकता। कैसे जाएंगी आप?"

"चली जाऊंगी।"

"नंगे पांव!" दशरथ बाबू ने देखा, इस उम्र में भी एड़ियां चिकनी और मुलायम हैं, लाल हैं। बोले-"ऐसा कौजिए, आप मेरी चप्पल ले

लीजिए।”

वृद्धा ने प्रश्नबिद्ध नेत्रों से दशरथ बाबू को देखा--“और आप नंगे पांव...!”

उन आंखों में दशरथ बाबू की आंखें उहर गई। कुछ सरस जरूर दिखा कि बोले--“मैं तो निकट ही रहता हूँ- एम 24 में।”

दोनों की यह पहली बातचीत थी। दशरथ बाबू ने पहली बार आज वृद्धा की उम्र का अंदाज लगाया, होगी कोई साठ वर्ष के आस-पास। बाल प्रायः सब पक चुके हैं। फिर मन ने इंकार किया, बाल पकने से क्या होता है! काटी नहीं कहती कि साठ की होंगी।

घर में दूध का पॉली बैग हाथ से लेती बहू ने पूछा--“बाबूजी, आपकी चप्पल?”

दशरथ बाबू पहले मुस्कराए, फिर हंस पड़े। क्या बोलें? बहू ने उनसे तो कुछ नहीं कहा, लेकिन आफिस जाते पति से बोली--“बाबूजी चप्पल जाने कहां छोड़ आए हैं। लौटते वक्त नया लेते आइएगा।”

वृद्धा अपने घर में संकुचित-सी दाखिल हुई। अपनी टूटी चप्पल और पांव वाली चप्पल एक ओर रखकर वह रसोई में दूध रखने गई। बाहर निकली, तो देखा-- बहू चप्पलों को देख रही थी--“मांजी, यह चप्पल कैसे टूटा?”

“पीछे चल रहे आदमी का पांव चप्पल पर पड़ गया था।”

“और आप उसकी मर्दाना चप्पल लेकर चली आई?”

“नहीं, वो जो एम-24 में रहते हैं, उन्होंने अपनी चप्पल दे दी।”

“वाह रे मेहरबानी! और आप उसकी चप्पल पहनकर चली आई? नंगे पांव आने में आपके तलवे मैले हो जाते!” बहू के स्वर की कटुता बेधक थी।

छोड़िए, यह सब घर की दीवारों के अंदर की बात है।

दूसरे दिन वृद्धा ने देखा, दशरथ बाबू पांवों में नई हवाई चप्पल डाले चले आ रहे हैं। वह सोच रही थी कि धूल भरे उनके नंगे पांव कैसे

लगेगे? उनका आग्रह मानकर उनकी चप्पल पहनकर वह क्यों चली गई?

दशरथ बाबू ने देखा, वृद्धा के पांवों में उन्हीं की चप्पल थी।

वृद्धा बोली--“हड़बड़ाकर नई चप्पल क्यों खरीद लीं? क्या यह समझे कि मैं चप्पल नहीं लौटाऊंगी?”

एक बार दशरथ बाबू को देखकर वृद्धा ने नजरें झुका लीं।

दशरथ बाबू ने वृद्धा के चेहरे पर कुछ उदास लकीरें देखीं। कहा--“मैंने चप्पल की बाबत किसी से कुछ नहीं कहा था। मेरे खाली पांव देखकर बहू को लगा कि मैंने चप्पल कहीं खो-खवा दी है। उसने बिना मुझसे पूछे नई मंगावा दी।”

दशरथ बाबू ने देखा, वृद्धा के चेहरे की उदास रेखाएं और गहरा गई हैं।

दूध की वैन आ गई थी।

वृद्धा ने दशरथ बाबू की चप्पल उतार दीं--“इन्हें आप कैसे ले जाएंगे?”

“आपकी चप्पल तो बनीं नहीं।”

वृद्धा ने उसांस ली--“बन ही जाएंगी कभी।”

इस तरह अपरिचय और अबोल की जो दीवार थी, गिर गई।

अगले कई दिनों तक वृद्धा नंगे पांवों आती रहीं। दशरथ बाबू यही दर्शाते रहे कि उन पांवों की तरफ उनकी नजर नहीं है।

एक दिन वृद्धा ने पूछा--“आपका नाम जान सकती हूँ?”

सहज भाव से दशरथ बाबू के मुंह से निकला--“दशरथ!”

वृद्धा शरमा गई--“आप मजाक करते हैं?”

“क्यों क्या मेरा नाम दशरथ नहीं हो सकता?”

“नहीं! अपनी उमर का तो खयाल कीजिए। बुढ़ापे में यह दिल्लगी...।”

वैन नहीं आई थी। लेकिन वह दशरथ बाबू के पास से उठकर चली गई।

दो-तीन दिनों तक वृद्धा न दशरथ बाबू के पास बैठी और न उनसे कोई बात की।

अगले दिन वह पहले पहुंची थी। दशरथ बाबू को देखकर खड़ी हो गई--“आइए!”

दशरथ बाबू आकर बैठ गए। वह बोली--“मैं जान गई हूँ, आपका नाम वही है। उस दिन तो मैं यही समझी कि आप मजाक कर रहे हैं। अच्छा, आप बतलाइए, मेरा नाम जानते हैं?”

“कैसे जान सकता हूँ?”

“मेरा नाम है सुमित्रा।”

“अच्छा नाम है। आप अच्छी मित्र हो सकती हैं।”

“अपने नाम को लेकर ही मुझे लगा कि आप दिल्लगी कर रहे हैं।”

दशरथ बाबू चकित भाव से मुंह खोले बातों को समझने का प्रयास करते रहे। फिर हंस पड़े--“ओ-हो-हो-हो!... लक्ष्मण की मां सुमित्रा!”

उनके मन के भीतर गूंजता रहा, दशरथ की एक पत्नी का नाम सुमित्रा था।

सुमित्रा लज्जारक्त सिर झुकाए बैठी थी कि वैन आ गई।

दशरथ और सुमित्रा रास्ते में आते-जाते मिल जाते या फिर मिल्क बूथ के पार्क में। वैन की प्रतीक्षा में लोग पार्क की बेंचों पर ही बैठे रहते। आपस में बात करने का मुख्य विषय होता राजनीति... कि कौन-कौन नेता चोर है और अपराधों में डूबा हुआ है। केंद्र से लेकर राज्य तक में कैसे-कैसे आर्थिक कुकांड हो रहे हैं। अदालत की सन्नद्धता के बाबजूद केंद्रीय जांच ब्यूरो का रवैया विश्वसनीय नहीं। दशरथ बाबू और सुमित्रा के बीच की बातें होतीं-- सज्जी की महंगाई, लोडशेडिंग की दिक्कतें, गैस की समस्या या फिर चीजों के दाम पिछले साल कितने थे और एक साल में किस प्रकार दूने हो गए हैं। कभी बूथ से दोनों साथ चलते और आगे जाकर उनके रास्ते अलग हो जाते। एक दिन

साथ चलते- चलते सुमित्रा ने पूछा-“आप कब रिटायर हुए?”

“उन्नीस सौ पिचास्सी में।”

सुमित्रा ने मन में ही मन हिसाब लगाया-“तब तो आप सतर के पास पहुँच रहे हैं। मैं आपसे दस साल छोटी हूँ।”

दशरथ बाबू ने सुमित्रा को देखा, पेशानी पर झुर्रियों की मात्र दो रेखाएँ थीं। माँग सूनी। चेहरा पहले इससे भी ज्यादा गोरा रहा होगा।

सुमित्रा बोली-“लेकिन आप सतर के लगते नहीं हैं।”

“और तुम, तुम क्या साठ की लगती हो?”

सहसा दशरथ बाबू को लगा, अरे! उन्होंने यह क्या कह दिया! उनका सिर झुक गया। पहली बार सुमित्रा के लिए उनके मुँह से ‘तुम’ निकला था।

अगले दिन वह बैंक के इंतजार में बैठे थे। बगल में बैठा आदमी डा. नरेंद्र के लड़के के अपहरण के प्रति चिंता व्यक्त कर रहा था। उसका ख्याल था कि इस अपहरण में भी नंदू गोप का ही हाथ है- “पुलिस क्या करेगी? खुद मुख्यमंत्री का उसकी पीठ पर हाथ है। गोयल के बेटे का अपहरण हुआ, तो गोयल मुख्यमंत्री से मिला। गोयल मुख्यमंत्री के लिए हर तरह से हाजिर रहता था और वह उनका प्रिय आदमी समझा जाता था। मुख्यमंत्री ने आश्वासन दिया कि बच्चे को अपहर्ताओं के चंगुल से छुड़ाने के लिए वह कोई कसर नहीं छोड़ेंगे लेकिन आठ साल का वह लड़का डेढ़ महीने तक लापता रहा, तो मुख्यमंत्री ने क्या कहा, जानते हैं? कहा, ‘गोयल, तुम्हारे लिए पाँच लाख कोई बड़ी रकम नहीं है। अपने आदमी हो, इसलिए कहता हूँ। ये पुलिस वाले साले सब निकम्मे हैं। क्या ठिकाना कि पुलिस से साठ-गाँठ हो। ज्यादा देर होगी, तो बच्चे के साथ कोई हादसा भी हो सकता है। फिरौती देकर बच्चे को छुड़ा लो।’ यह है हमारा प्रशासन। देखिए, हम कितने सुरक्षित हैं!”

दशरथ बाबू स्थिति की यथार्थता की स्वीकृति में चुपचाप सिर हिला रहे थे। तभी वह आदमी उठकर खड़ा हो गया।

दशरथ बाबू ने पूछा-“क्यों खड़ा हो गए? वैन आ रही है क्या?”

वह आदमी मुस्कराया-“नहीं, वो आ रही है। यहां बैठेंगी न?”

सुमित्रा पार्क के अंदर आ रही थी। दशरथ बाबू सोचने लगे, सुमित्रा मेरे पास बैठती हैं- लोगों की नजर में यह बात है।

अंदर आते-आते सुमित्रा लौट गई। वैन आ रही थी।

अगले दिन दशरथ बाबू बूथ पर नहीं देखे गए। दूसरे दिन दूध लेकर भी सुमित्रा पार्क में अटकी रही। एक औरत उससे बात कर रही थी।

औरत चली गई, तो सुमित्रा ने अपने आप से पूछा, क्यों अटक गई थी वह भला? घर में दूध का इंतजार हो रहा होगा। लड़के को चाय तो चाहिए ही। लड़के से ज्यादा तो बहुरिया को तलब होगी। चाय के बिना तो उसकी हाजत ही साफ नहीं होती। इसलिए वह थोड़ा दूध बचाकर रख लेती हैं। फिर भी बकझक तो करेगी ही। पर मैं क्या यहां मटरगर्त कर रही हूँ?

दशरथ बाबू तीसरे चौथे दिन भी नहीं दिखे।

एक दिन एम-24 की कालबेल बजी। दरवाजा खुला। घर की बहू ने देखा, कोई वृद्धा महिला दरवाजे पर खड़ी हैं। पूछ रही थीं- “दशरथ बाबू कहां हैं?”

“वो तो यहां नहीं हैं। क्या काम है?”

“काम! काम क्या रहेगा?” महिला असमंजस में थीं।

बहू शिष्टतावश बोली-“आइए, अंदर आइए!”

“नहीं-नहीं, कई दिनों से नहीं दिखे। मुझे लगा, कहीं...”

“वो गांव गए हैं।”

अंदर से किसी पुरुष कंठ ने पूछा-“कौन है, निनी?”

निनी ने उत्तर दिया-“एक हैं, बाबूजी को पूछ रही हैं।”

पुरुष प्रत्यक्ष हुआ-“आपको तो मिल्कबूथ

पर देखा है।”

“हां बूथ पर से दूध लाने मैं ही जाती हूँ।”

“ओ! आइए, बैठिए। चाय पीकर जाइएगा।” बहू ने आग्रह किया।

चाय के बीच में सुमित्रा बोलीं-“गांव गए हैं, तो जाने कब लौटें।”

“नहीं, जल्दी ही लौट आना चाहिए। वैसे सब कुछ उनकी इच्छा पर निर्भर है।”

सुमित्रा उठती हुई बोलीं-“यह घर कितना अच्छा है! कोई बच्चा...”

बहू मुस्कराई-“है। स्कूल गया है।”

“बेटी! घर सुगृहिणी और बच्चे से ही होता है। नहीं तो इन निर्जीव दीवारों में क्या रखा है?” कहते-कहते लगा, महिला का कंठ सिकत हो गया है।

बहू ने वृद्ध महिला को गौर से देखा। वह जाने के लिए मुड़ गई थीं।

पुरुष ने पूछा-“पिताजी आएंगे, तो मैं उनसे क्या कहूंगा?”

“कुछ कहने की जरूरत नहीं है। कई दिनों से उन्हें नहीं देखा, तो लगा, कहीं बीमार-बीमार...” सुमित्रा ने अपनी पीठ पर दरवाजा खींच लिया। मोटिस स्वतः लाक हो गया।

पति-पत्नी एक दूसरे को क्षण-भर देखते रहे। पत्नी ने पूछा-“कौन हैं यह?”

“बूथ पर इन्हें देखा है। कौन हैं, यह तो मैं भी नहीं जानता। और मैं जानकर क्या करूंगा? पिताजी जानते हैं, बस। पिताजी जिसे जानें, उसे मैं भी जानूँ, यह कोई जरूरी तो नहीं।”

पत्नी बोली-“हां, जरूरी तो नहीं। लेकिन वह पिताजी को लेकर जिस तरह चिंतित थीं, इससे क्या यह नहीं लगता कि वह ज्यादा क्लोज हैं?”

“देखो निनी, बुढ़ापा एक अजीब-जैसी उम्र है। क्या तुम्हारे पास समय है कि तुम पिताजी के पास बैठकर बातें करो? क्या मेरे पास समय है? अगर समय बचाएंगे भी, तो

दस-पांच मिनट में बात खत्म हो जाएगी। और बच्चे बूढ़े के पास कुछ देर बैठ लेंगे, लाड लड़ा लेंगे, फिर दूसरे बच्चों में जा मिलेंगे। बुढ़ापे के इस अकेलेपन के खालीपन को कहीं तो भरना होगा। एसोसिएशन के लिए आदमी हमउम्र की तलाश में रहता है। कोई तो सुनने वाला, कहने वाला पास हो। मन की इस भूख को उस उम्र में जाकर समझोगी।" शुभेदु ने पत्नी को समझाया।

उस दिन चैन साढ़े सात बजे तक नहीं आई, तो सुमित्रा ने शुभेदु से कहा- "बेटे, और कितनी देर इंतजार करोगे? कूपन दे दो, मैं दूध लिए आ रही हूँ।" और उसने शुभेदु के हाथ से पॉली बैग ले लिया।

सुमित्रा जब दूध लेकर पहुंची, तो निनी ने कहा- "मांजी, आपने नाहक तकलीफ की। दस-पांच मिनट बाद चैन तो आ ही गई।"

सुमित्रा बोली- "देखो बेटा, मर्दानों को दस काम होते हैं। और मुझे तो वहां ठहरना था ही। तो एक ही काम के लिए दो-दो आदमी क्यों उलझे रहते?"

उस दिन निनी ने इतना जाना कि सुमित्रा के दो लड़कियां हुईं और एक लड़का। घर के मालिक कोई कर्ज छोड़कर नहीं मरे।

"दोनों बेटियां अपनी जिंदगी में ही ब्याह डाली थीं। लड़का भी बैंक की नौकरी में लग चुका था। उन्होंने समझा, उनका दायित्व खत्म हो गया। चले गए। सुमित्रा को मझधार में छोड़कर चले गए।" बताते-बताते सुमित्रा का गला भर आया था। सुमित्रा ने यह भी बताया कि इस कालोनी में मकान उन्होंने ही लिया था। अच्छी-खासी दुकान थी।

चलते-चलते सुमित्रा ने कहा- "बेटा, देखने से ही लगता है, इस घर में सुख है, आनंद है। बेटा, इस घर के स्वर्ग को बनाए रखना। सास गांव में रहती हैं क्या?"

निनी बोली- "नहीं। बाबूजी रिटायर हुए, उसके दो साल बाद ही..."

सुमित्रा ठमककर खड़ी हो गई। प्रश्नाकुल दृष्टि निनी पर टिक गई।

निनी कह रही थी- "बीमार होकर बिस्तर

से लग गई। तीन महीने तक बिस्तर पर पड़ी रहीं। पड़े-पड़े सब कर्म होता था। बाबूजी की जीवट कहिए, मां की तरह अम्मा की सेवा में लगे रहे। पता नहीं, उस बीच वह कभी सोए भी या नहीं। जब देखिए, आरामकुर्सी में अम्मा के पलंग के बगल में बैठे हैं। उसी के दरम्यान झपकी आ गई, आंखें थोड़ी देर के लिए लग गई, बस। दवा-दारू, गंदे कपड़े बदलना, उन्हें खुद साफ करना, धोना, सुखाना। वह मुझे गंदा कपड़ा छूने नहीं देते थे। वही थे, जो... बहुत प्यार था दोनों में। बाबूजी की यह दूसरी पत्नी थी। पहली तो शादी के साल भर बाद ही संसार छोड़ गई थी। इसीलिए..."

सुमित्रा की बंधी सांस ठच्छवास बनकर निकली- "अपना-अपना भाग्य है, बेटा!"

"सोचती हूँ, बाबूजी को कुछ हुआ, तो मैं क्या उतना कर पाऊंगी?"

"चिंता न करो, बेटा! वह महान पुरुष हैं। किसी की सेवा लेने के पहले चलते-चलाते चल देंगे।"

वातावरण पुरानी स्मृतियों से बोझिल हो रहा था।

सुमित्रा जब घर से निकली, तो न जाने कैसी दारुणता से मन भरा था। हाय! जाने कितना समय बीत गया! कुछ पता ही नहीं चला।

घर में पहुंचने पर सुमित्रा की बहू ने उत्कटता से पूछा- "कहां थीं अब तक?"

सुमित्रा कोई जवाब दिए बिना दूध लेकर रसोईघर में गई और गैस जलाकर दूध गरम करने लगीं। बहू पीठ पर थी- "वह आपको खोजकर बूथ पर से लौट आए हैं। मटरगश्ती के लिए जाना था, तो कहकर जातीं। लोगों को परेशान तो नहीं होना पड़ता।"

सुमित्रा प्रतिक्रियाहीन काम में लगी रहीं।

दशरथ बाबू गांव से सप्ताह भर बाद लौटे। बहू ने सूचना दी- "वह आई थीं।"

"कौन?"

"आपको खोज रही थीं।"

बहू के होठों को विहंसते देख दशरथ बाबू

बोले- "जानू भी तो, कौन थी!"

"आप जान गए हैं कि कौन थी।" और निनी अंदर चली गई।

दशरथ बाबू को धक से लगा, कहीं सुमित्रा न आई हो। उसे भी क्या सूझा! उन्होंने ऊंची आवाज में पूछा- "कुछ नाम-धाम बतलाया था उसने?"

निनी सामने आई, तो उसके हाथ में चाय की प्याली थी। हंसती हुई बोली, "मैंने उनसे पूछा था, तो बोलीं- कहने की जरूरत नहीं, वो जान जाएंगे।"

प्याली रखकर निनी किचिन की ओर वापस मुड़ गई।

दशरथ बाबू ने प्याली हाथ में तो ली, लेकिन होठों तक ले जाते-जाते रुक गए। सुमित्रा से बोलने-बतियाने का लोग जाने क्या अर्थ ले रहे हैं!

निनी जब फिर इधर से गुजरी, दशरथ बाबू ने पूछा- "बहू, वह क्यों आई थी यहा?"

"कौन?" निनी अनजान-सी मन ही मन विहंसी।

"वही, जो आई थी।"

"वह चिंतित थीं कि कहीं आप बीमार-बीमार..."

दूसरे दिन मिल्कबूथ पर दशरथ बाबू को देखकर सुमित्रा बोलीं- "चुपचाप कहां गायब हो गए थे?"

"हूँ!"

सुमित्रा चुपचाप सोचती रहीं, यह आदमी कितना सहृदय और अंतः उत्सर्गी है! इसने पत्नी को कितने अटूट भाव से प्यार किया था! इस पुरुष को छोड़कर चले जाने का दुख उस बेचारी को स्वर्ग में भी सालता होगा।

दशरथ बाबू बैंचों पर पार्क में इधर-उधर बैठे लोगों को एक-एक कर देख गए कि कौन-कौन उन दोनों को देख रहा है। वह सुमित्रा से कहना चाहते थे कि तुम मेरे पास आकर मत बैठ करो। हालांकि हमारी उम्र किसी रोमांस की नहीं रह गई, लेकिन जाने लोग क्या सोचते हों! परंतु वह कुछ कह नहीं सके।

उसके दो दिनों बाद सुमित्रा का बूथ पर

आना बंद हो गया। दो-तीन दिनों तक तो दशरथ बाबू ने उधर गहराई से नहीं सोचा। लेकिन कहीं कुछ छूट गया है, खो गया है— यह मन के किसी कोने को कचोटता रहा—क्यों नहीं आ रही सुमित्रा? क्या हुआ होगा उसे?

सप्ताह बीता होगा या एक-दो दिन ज्यादा भी हुए होंगे कि एक सांझ सुमित्रा दशरथ बाबू के घर आ गई। आ गई, तो रात के नौ बजे तक रुकी रह गई। कुछ देर तक तो वह टीवी देखती रहों फिर निनी के पास रसोईघर में पहुँच गई। वहीं गुमसुम बैठी रहों। निनी ने पूछा भी कि कुछ हुआ है क्या माँजी? तो सुमित्रा दीर्घ सांस लेती हुई बोली—“अब क्या होना-हवाना है, बेटी! होना तो यही है कि मेरी अर्धी उठे।”

निनी ने इतना समझ लिया कि भीतर बहुत भरा है, जरा-सी सुई चुभी कि सब रिस-रिसकर बाहर आ जाएगा। उसने सुमित्रा के आगे चाकू और परवल रख दिए। सुमित्रा धो-धोकर परवल काटने लगीं।

तभी दशरथ बाबू चौखट पर आ खड़े हुए, “आप अभी तक यहीं अटकी हैं। घर के लोग चिंतित होंगे!”

सुमित्रा बुदबुदाई—“न कोई घर है और न कोई चिंता करने वाला है।”

पता नहीं, दशरथ बाबू ने वह सब सुना या नहीं। निनी सब भांप गई। बोली—“आप घर से रुठकर आई हैं? लेकिन रात में उन लोगों की गैरजानकारी में यहां रुक जाना क्या उचित होगा?”

सुमित्रा कुछ क्षण बैठी रहों। फिर उठकर खड़ी हो गई—सन्नद्ध और दशरथ बाबू के पीछे हो लीं।

आगे जाकर सड़क के दोनों ओर वीथिया अशोक के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष कतार में खड़े थे। हवा में हिलते उनके पत्ते बंगलों से आती रोशनी को बाधित कर रहे थे। इससे नीम अंधेरा-जैसा था। दशरथ बाबू ने पूछा, “क्वार्टर किधर है?”

सुमित्रा ने कातर भाव से दशरथ बाबू का दाहिना हाथ धाम लिया। अनुनयपूर्वक बोली—“मुझे उस नरक में क्यों भेज रहे हैं! मुझे किसी वृद्धा आश्रम में रखवा दीजिए।”

आज के पहले सुमित्रा ने कभी प्रकट नहीं किया था कि घर में वह उपेक्षित और प्रताड़ित हैं और बोझ बनकर जी रही हैं। लेकिन दशरथ बाबू की छठी इंद्रिय ने दुख का संस्पर्श कर लिया था। उन्होंने अनुभव किया, जिन हाथों ने उनका हाथ पकड़ रखा है, वे कांप रहे हैं। उन्हें सहारे की जरूरत है। उनका कंठ सिक्त हो उठा—“सुमित्रा, क्या दुख है?”

जाने क्यों, उनकी आंखों के आगे पत्नी की छवि कौंध गई।

“कोई सुख नहीं है। आपकी पत्नी कितनी सौभाग्यवती थीं! स्वर्ग में भी आपका अभाव उन्हें खलता होगा। आपकी बहू निनी...लक्ष्मी है। मेरे घर में भी एक बहू है...हाय! नागफनी है। जाने क्या सुनकर बहू ने बेटे के कान भरे हैं। हमारी उम्र क्या इश्क लड़ाने की है? मेरी कोख का जाया मेरा बेटा कहता है, मैं बूथ पर इश्क लड़ाने जाती हूँ।...अब मैं क्या कहूँ कि कांटे कहां-कहां चुभते हैं! मेरे मालिक के गुजर जाने के बाद से बहू ने मेरे लिए घर को नरक बना दिया है। किसी वृद्धा आश्रम में...।”

सुमित्रा की कातरता दशरथ बाबू को बेध गई। दो क्षण सोचकर उन्होंने पूछा—“वृद्धा आश्रम का खर्च क्या तुम्हारा बेटा दे सकेगा?”

“नहीं! वे लोग...”

दशरथ बाबू ने सोचा, सुमित्रा ने उन पर इतनी निर्भरता के विश्वास का अधिकार कहां से प्राप्त कर लिया। उन्होंने पहली बार अगाध निकटता का अनुभव किया। उन कांपते हाथों को अपने दाहिने हाथ से दबाते हुए उन्होंने आश्वस्त किया—“देखो, मैं क्या कर सकता हूँ!”

अशोक के झुके-झुके पत्ते हौले-हौले हिल रहे थे। प्रकाश झिलमिल-झिलमिल कांप रहा था। उस कंपित प्रकाश में दोनों ने जिस दृष्टि से एक-दूसरे को देखा, उस दृष्टि को चौंध से भरता टार्च का प्रकाश आया। टार्च सुमित्रा के बेटे के हाथ में था। टार्च का हाथ सुमित्रा के सिर पर पड़ा। सुमित्रा सिर धामकर वहीं बैठ गई। दशरथ बाबू स्तंभित खड़े रहे। सुमित्रा को उनका बेटा घसीटता हुआ लिए जा रहा था।

रात को शुभेंदु जागा, तो उसने देखा कि

पिताजी के कमरे में रोशनी जल रही है और पिताजी लेटे हैं, शायद सो रहे हैं। उसने रोशनी बुझा दी। दशरथ बाबू बोले—“कौन? शुभेंदु?”

“आप सोए नहीं, पिताजी?”

दशरथ बाबू ने उठकर बैठते हुए कहा—“बत्ती जला दो और यहां आओ।”

रोशनी कमरे में फैल गई। शुभेंदु ने पलंग के पास आकर पूछा—“क्या बात है, पिताजी?”

जरा-सी चुप्पी के बाद दशरथ बाबू ने स्थिर कंठ से कहा—“मुझे पेंशन के बत्तीस सौ रुपये मिलते हैं। ये रुपये मैं घर में देता रहा हूँ। उसमें से मैं ढाई हजार रुपये किसी दूसरी मद में खर्च करना चाहता हूँ।”

शुभेंदु बोला—“आप स्वतंत्र हैं। इसमें मुझे कहने-सुनने का सवाल ही पैदा नहीं होता।”

“अभी परिवार तुम चलाते हो, इसलिए सूचित करना उचित था।”

दूसरी सुबह शुभेंदु ही मिल्कबूथ पर गया। लौटा, तो वह निनी से धीरे-धीरे कुछ कह रहा था। दशरथ बाबू ने पूछा—“क्या है, शुभेंदु?”

शुभेंदु टाल गया—“कुछ नहीं, पिताजी, कुछ भी नहीं!”

लेकिन निनी जब चाय लेकर आई, तो वह बोले—“आज जी अच्छा नहीं लग रहा, बहू! चाय ले जाओ।”

तब निनी उनके सिरहाने के पास आ खड़ी हुई। बोली—“वो, जो कल रात को यहां आई हुई थीं, खुली गैस के कारण उनके रसोईघर में आग लग गई। उस समय वह रसोईघर में ही थीं।”

दशरथ बाबू की आंखें जाने क्या देखती रहों। भरे कंठ से बोले—“बहू! आदमी को तो एक दिन जाना ही होता है। आदमी चला जाता है। समय चलता रहता है। भविष्य वर्तमान होता है और फिर भूत हो जाता है। यही गति है। लेकिन सारी निःशेषता के साथ कुछ समय होता है, जो शेष रह जाता है।”

निनी को लगा, पिताजी को अभी एकांत और अकेलापन चाहिए। वह चाय की प्याली लिए निकल गई। □

प्रेम

वह एक बहुत बड़ा ठग है
यहां तक कि दिल्ली के ठगों से बड़ा
उसने ठगा है मुझे और
छीन लिया है मेरे सुख का एक टुकड़ा
उसके हथियार इस बीसवीं सदी के
हथियारों से ज्यादा हैं खतरनाक
वह दिखाई नहीं देता
लेकिन होता है कहीं भी

वह एक बहुत बड़े पक्षी-सा
सूरज की किरणों की मानिंद
हमारी आंखों में आता है और
उड़ा ले जाता है
हमारे सबसे खूबसूरत सपने

दिलचस्प है कि वह जिससे प्रेम करता है
उसी को मारता है धीरे-धीरे
चुंबकीय क्षणों की सीमा के बाहर
अपने गहन एकांत अवसाद से

वह ईश्वर से भी अधिक ताकतवर और
भयानक है क्योंकि वह अपने
एक क्षण से उगा सकता है ताजमहल
कर सकता है सृष्टि जैसे
यह दुनिया, ये सूखे होठ

बावजूद इतने डर के
मृत्यु की सीमा के भीतर
मैं पाना चाहता हूं उसका साथ
क्षण भर का साथ ताकि
मृत्यु की प्रतीक्षा को दे सकूं
विस्तार, सरल सफेद विस्तार!

बसंत

मुझे बेईमानी लगता है यह कहना
कि बसंत आ गया है, क्योंकि
चिड़ियाएं नहीं गा रही हैं
अपना स्वाभाविक गीत
उदास चेहरों पर नहीं लौट रहे हैं
फगुनाहटी रंग

नहीं लौट रही है रोशनी
बूढ़ी लालटेन में जो
अंधकार की बारिश के बीच
अपने वजूद के लिए लड़ रही है
आशाओं के पतझड़ में
मां बुहार रही है सपने
नीले सलोन गर्भस्थ सपने

पिता के होठों पर जम गई है हंसी
जैसे आग पर जम जाती है राख
पानी की अतल गहराई में काई
वैसे ही जम गया है बसंत
संबंधों की सफेद चादर पर
बसंत अब नहीं आता है मौसम में
वह कभी भी आ सकता है
जैसे कभी भी आ सकती है मंहगाई
भाषण देते नेताओं को जमुहाई

इस शहर में अब कभी ही
आता है बसंत!

कोई एक जिंदगी के मायने

कोई एक जिंदगी के
मायने ठहर गए थे
क्योंकि मायनों का रास्ता
क्रूर पिताओं के बीच से जाता था

भावनाओं की वह नदी
बांझ हो चुकी थी जिससे अब तक
राग का नीरव झर रहा था

राग की चांदनी में
नदी के बीच पत्थर उग रहे थे
छोटे-छोटे नन्हे नुकीले पत्थर

ये नन्हे नुकीले पत्थर
नदी के पुल पर चल रहे थे
पुल हिल रहा था
और पुल के हिलने से
आवाजाही रुक गई थी

मित्रो! यह घटना एक ऐसी
बस्ती में घटी थी जहां केवल
एकांत था, सुरक्षित एकांत
और पत्थर इकट्ठा थे
पुल-पिताओं के खिलाफ
जेबुनिसा की रक्षा के लिए।

कांटों की छतरी

पंख कटे
सांसें बोझिल हैं,
मन से डरी-डरी
जिंदगी फिर भी उड़नपरी!
भौरों से गुंजार,
फूल से गंध नहीं अनजान
पतझर से मधुमास
पात से
तरुवर की पहचान
मन-पाटल को घेरे रहती / कांटों की छतरी!
पग-पग पर
विचित्र मुद्राएं
नाटकीय संवाद
मौलिकता है मौन
मुखर है
संपादित अनुवाद
महानाट्य का रूप संवारे / मंचों पर प्रकरी!

दिन हैं जातक-कथा

बिना छतों, दीवार रह गई
एक हवेली भर
ऐसे दुर्दिन मिले, जिंदगी
रही अकेली घर!
स्मृति-चिह्न रह गए केवल
नैन-सरोवर में
आहट, खनखन औ' मठारना
शेष धरोहर में
दिन है, जातक-कथा
कट गई रात पहेली कर!
संबंधों से नातों तक
बस रेगिस्तान मिला
मर्म समेटे, मौन ढह गया
जर्जर एक किला
रेखाएं विद्रोह न कर दें
कभी हथेली पर!

शंखनी-गागर

छिल-छिल कांधे गए
पांव का निकला जैसे राम
चलते-चलते मिली, जिंदगी-
कांवर लिए हुए
शंखनी-गागर लिए हुए!
संबंधों की शुष्क नदी पर
पुल इतने बांधे
टूटी नाव, रेत की मछरी
सपनों को लादे
कहीं अगस्त्य-अंजुरि मिल जाए
सागर लिए हुए!
गुजरी अग्नि-परीक्षाओं से
यह जीवन वैदेही
पंचवटी से प्रासादों तक
सुख-दुख रहे सनेही
सप्तपदी संन्यास न ले ले
भांवर लिए हुए!

दीप-बाती मौन है

छिल न जाएं
नेह के अनुबंध
हैं बहुत मुश्किल
सिमटना दूरियों का
करम है इन पर बड़ी मजबूरियों का!
जिंदगी तरुवर
दिवस सूखी हुई-सी डाल
पूरती है मकड़ियां
जिस पर दुखों का जाल
छिन गया है
फूल का मकरंद
और उतरा है नशा कस्तूरियों का!
दीप-बाती मौन है
लेकर अनावृत आस्थाएं
देख राव-यात्रा शलभ की
कांपती है तम-शिराएं
जुगनुओं का गान
है स्वच्छंद
गीत गोविंद-सा है मन संतूरियों का!

औरत

वह औरत
जो सुबह से शाम तक
भटकती है जंगलों में
बीनती है लकड़ियां
सहती है पावों में कांटों की चुभन
और जीती रहती है जंगल-सा जीवन
वह औरत, इस देश की औरत नहीं है

वह औरत
जो छोटी-छोटी चीजों के लिए
सारा दिन, सुबह से शाम तक
उतरती-चढ़ती है पहाड़ी ढलानों पर
छिपाए रहती है टूटते शरीर की थकन
पढ़ती रहती है भाग्य की रेखाएं
सीं लेती है होठ
और जीती रहती है पहाड़-सा जीवन
वह औरत, इस देश की औरत नहीं है

वह औरत
जो भटकती है मरुस्थलों में
अनगिनत मरीचिकाओं में उलझती है
डुबो देती है गर्म रेत में अपनी देह
और खोजती रहती है
भूख, प्यार और भटकन का अर्थ
और जीती रहती है
रेतीले अंधड़ों-सा जीवन
वह औरत, इस देश की औरत नहीं है

वह औरत
जो तोड़ती है सारा दिन गिट्टियां
ढोती है ईंट और गारा
चढ़ती-उतरती है बहुमंजिली इमारतों में
नहीं रख पाती धूप और पसीने का हिसाब
नहीं गिन पाती चोटों के निशान
वह औरत, इस देश की औरत नहीं है

वे औरतें
जो काटती हैं दूसरों की फसलें

उठाती हैं बोझ

वे औरतें
जो खिलाती हैं दूसरों के बच्चे
मांजती हैं बर्तन, लगाती हैं पोछा

वे तमाम औरतें
जो बुनती हैं दिन में सपने
और खोजती रहती हैं सुखों की सौगात

वे तमाम औरतें
जो किसी ज्वालामुखी की तरह फट पड़ना चाहती हैं
लेकिन रोक लेती हैं मन के गुबार

वे तमाम औरतें
जो हंसना नहीं जानती
नहीं जानती शृंगार बोध
रूप और यौवन का अर्थ
उलझी रहती हैं चिंताओं में
दिन पर दिन टूटती रहती हैं

वे तमाम औरतें
इस देश की औरतें नहीं हैं

वे तमाम औरतें
हाशिए पर खड़ी औरतें हैं
रख दी गई हैं
किसी सूखे फूल की तरह अनावश्यक किताब में
भुला दी गई हैं
किसी दुःस्वप्न की तरह!

कुछ लड़कियां

कुछ लड़कियां
खारे समुद्र में पड़ी सीप होती हैं
अपने आंचल में मुक्ता छिपाए
अपने मूल्य से अनभिज्ञ
बिना किसी मूल्यांकन के
छूट जाती हैं धरातल पर

कुछ लड़कियां
शापग्रस्त अहल्या होती हैं
भोगती रहती हैं अकारण दंड
किसी राम की प्रतीक्षा में
गिनती है एक-एक दिन
और विलीन हो जाती हैं शून्य में
स्पर्श नहीं कर पाती न्याय की देह

कुछ लड़कियां
बुनती हैं सपने
पढ़ती हैं भाग्य की रेखाएं
घर, पिता का हो या पति का
एक पुरुष की छाया में
बनाती रहती हैं रेत का घरोंदा
कभी कोई लक्ष्मण रेखा पार नहीं कर पाती

कुछ लड़कियां
छिपकर खड़ी होती हैं दरवाजे के पीछे

चोरी से सुनती हैं धकी-हारी बातें
निहारती हैं पिता का हताश चेहरा
मां की बुझी हुई आंखें
अंगुलियों पर गिनती है कुल बहनों की संख्या
और डर से कांप जाती है

कुछ लड़कियां
अनुत्तरित प्रश्न होती हैं
सहभागी नहीं बनती
नहीं बांटती अपनी व्यथाएं
छिपा लेती हैं जीवन की थकन

कुछ लड़कियां अदृश्य होती हैं
कभी दिखाई नहीं पड़ती
छूट जाती हैं हमेशा गिनती में
नहीं बन पाती
देश या समाज का हिस्सा!

जुलूस ने ककहरा सीखा...

राजेंद्र भंडारी

चैत्र के सूखे में
देखते ही देखते पत्ते अल्पसंख्यक हो गए
शाखाएं बहुसंख्यक
देखता रहा चुपचाप खड़ा संविधान का पेड़
मौसम लीला रचता रहा
कभी भीग गए अल्पसंख्यक
भीग गए बहुसंख्यक कभी
मौसम लीला रचता रहा
पेड़ के कमर-कमर नाचने लगी कुल्हाड़ियां
पंछी उड़ गए आकाश ही आकाश
मृग दौड़ने लगे किनारा-दर-किनारा
देश के आंगन में
अंधकारपूर्ण सुरंग बनकर रह गई
संविधान की धारा-उपधाराएं
गोद में बच्चा लिए भागते
अपहरणकर्ता बन गए अक्षर
शब्द अंधे हो गए

वाक्य सब चरित्रहीन
अनुच्छेद विस्फोटित हुए बारूदी सुरंग बनकर
शब्दों को अर्थ की दृष्टि देने के लिए
वाक्यों को ईमान की भाषा सिखाने के लिए
जुलूस ने ककहरा सीखा बाजार के स्कूल में
अलकतरा के ब्लैकबोर्ड पर
'अ' - माने असहमति हुआ
'आ' - माने आक्रोश
मुड़ियां ऊपर उठाए चलते विचारों को
खाकी वर्दी बन गया मास्टर
'टियरगेस' बन गया डस्टर
जुलूस ने ककहरा सीखा बाजार के स्कूल में
रात के तीसरे प्रहर तक
जब नींद नहीं आई
गीता का कोई श्लोक बांचकर
किसी गली के किसी कमरे में
एक वृद्ध मस्त सो गया
लेकिन सोया नहीं बेटा
सोई नहीं बेटा
लिखते रहे पोस्टर रात-रात-भर!

ज्योत्सना ने अनुवाद : मिथिकांत

समवेत : स्वरों में एकरूपता की खोज

समवेत की परिकल्पना भारतीय संगीत में नई नहीं है। रचनात्मक कलाओं में, पूरे समाज को साथ लेकर चलने की अभिज्ञा पुरातन काल से हमारी मनीषा के पास रही है। सामवेद इसका पुष्ट प्रमाण देता है। समवेत को भारतीय समाज ने, अपनी लोक परंपरा के रूप में अंगीकार किया। सामूहिक गायन और सामूहिक नृत्य उनकी अपनी लोकशक्ति रही है। समवेत संगीत के क्षेत्र में इन दिनों नए प्रयोग हो रहे हैं और इनका उद्देश्य स्वरों की एकरूपता की खोज करना है। पिछले दिनों संगीत नाटक अकादमी द्वारा आयोजित ऐसे ही एक विशद कार्यक्रम पर विस्तृत चर्चा कर रहे हैं इलाशंकर गुहा

समवेत की परिकल्पना, भारतीय संगीत में कोई नई नहीं है। रचनात्मक कलाओं में, पूरे समाज को साथ लेकर चलने की अभिज्ञा, पुरातन काल से हमारी मनीषा के पास रही है। सामवेद इसका पुष्ट प्रमाण देता है। ऋग्वेद में पक्षियों के कलरव की तुलना सामगान से की गई है- उन्होंने लिखा- 'उद्गातेव शकुने साम गायसि।' समवेत को भारतीय समाज ने, अपनी लोक परंपरा के रूप में अंगीकार किया। चाहे बस्तर के आदिवासी हों या संथाल परगना के, गुजरात का लोक समाज हो या असम का- सामूहिक गायन और सामूहिक नृत्य उनकी अपनी लोकशक्ति रही है। कालांतर में संगीत के शास्त्रीय स्वरूप के अधिक शास्त्रसम्मत और विकसित होने के बाद धीरे-धीरे अभिजात समाज इसका पुरोधा बन बैठा- लोकमानस अपनी वाचिक परंपरा में ही अपने को अभिव्यक्त करता रहा।

संगीत कला में एकल की प्रतिष्ठा के बाद इसका समवेत स्वर जरूर टूटा। इसका एक सीधा-सा कारण यह हो सकता है कि भारतीय शास्त्रीय संगीत, समय के साथ-साथ व्यक्तिपरक रचना शैली की ओर अधिक बढ़ गया। शास्त्र का बंधन, रागों, घरानों की अपनी सीमाएं और अपनी स्वतःस्फूर्त ऊर्जा यानी स्वर विलास ने उसे एक खास परिधि में समेट दिया। संगीत का स्वरूप भी कुछ ऐसा विकसित हुआ कि वह समाज से निकलकर, कलाकार की एकल प्राणशक्ति में जा बैठा! -आलापचारी, तय-ताल की अठखेली, तानों की अजस्र बौछार- यह सब समवेत के अनुकूल भी नहीं था और स्वीकार्य भी। वाचिक परंपरा की रचनात्मक कलाओं में यह संभव भी नहीं होता-क्योंकि वहां पूरी रचनात्मकता, कलाकार विशेष की अपनी प्रज्ञा, व्यक्तिगत स्वर-विन्यास और सौंदर्यशास्त्र पर आधारित रहती है। संगीत की समाज निरपेक्ष शक्तियां यहां इसीलिए क्षीण होती गईं और वह अभिजात्य का विलास बन गया। प्रदर्शनकारी कला के रूप में उसकी सीमाएं संकुचित होती

गईं। हमारा संगीत अलिखित भी है अतः उसे पढ़कर बजाना या गाना हमारा संस्कार ही नहीं बना। संगीत के अकेलेपन का यही विवादी स्वर भी है।

संगीत के इस एकल संसार में 'समवेत' की उपस्थिति खोजने का प्रयास करता एक विशद आयोजन 'सृजन' हाल ही में, संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली के सौजन्य से संपन्न हुआ। छह दिन के इस उत्सव में समकालीन भारतीय संगीत के विभिन्न स्वरूपों का प्रदर्शन हुआ। वाद्यवृंद, प्रयोगधर्मी रचना प्रयोग, बैंड संगीत, वृंदगान, पार्श्वगत संगीत, और पूर्व-पश्चिम का संयोग इसमें देखने-सुनने को मिला।

इस आयोजन के संबंध में संगीतकार भूपेन हजारिका ने एक बातचीत में बताया कि आज भारतीय संगीत में कई तरह के प्रयोग हो रहे हैं। विभिन्न शैलियों, पूर्व-पश्चिम के संगम और प्रयोगधर्मी उत्कट रचनाशीलता का प्रभाव हमारे संगीत में सुना जा सकता है। देश के विभिन्न हिस्सों में चल रहे ये प्रयोग कैसे हैं- इसे सुनने, समझने का प्रयास इस आयोजन में किया जा रहा है।

समूहगान या वृंदगान समवेत संगीत का एक बहुप्रचलित सामाजिक माध्यम है। मूलतः यह धार्मिक गीतों से अनुप्राणित रहा है। पश्चिम में प्रचलित 'क्वायर' चर्च के माध्यम से एक सुगठित सांगीतिक स्वरूप के रूप में विकसित हुआ। क्रिसमस या अन्य विशेष आयोजनों में यह पश्चिमी समाज का एक आवश्यक अंग ही बन गया। विभिन्न स्कूलों में स्वर की संगति ही इसके माध्यम, वैचित्र्य और आनंद स्रोत का साधन बनी। हमारे देश में भी वृंदगान इसी से प्रभावित हुआ- कालांतर में फिल्म संगीत के विकास, और इटा द्वारा इसको अपनाने से इसमें कई प्रयोगधर्मी रचनाएं सामने आईं। 'सृजन' में देश के तीन विख्यात वृंदगान

दलों के कार्यक्रम सुनने को मिले। 'कलकत्ता यूथ क्वायर' की स्थापना 1958 में विख्यात फिल्मकार सत्यजित रे की अध्यक्षता में हुई। दिल्ली गानवृंद दल की स्थापना का श्रेय स्व. विनयचंद्र मौद्गल्य को जाता है। जबकि 'चेन्नई यूथ क्वायर' 1970 में शुरू हुआ। कलकत्ता के दल ने न केवल कलाकारों को तैयार किया बल्कि लोकसंगीत के संग्रहण, संरक्षण और प्रस्तुति का भी बीड़ा उठाया। लोकनृत्यों की वेश-भूषाएं, वाद्ययंत्रों का संग्रहण भी उनकी गतिविधियों का हिस्सा बना। उन्होंने देश के विख्यात रचनाकारों का सहयोग भी लिया और कई संगीतकार इससे जुड़े। प्रगतिशील विचारधारा के पोषक इन संगीत दलों ने भाषा की वर्जनाओं को भी तोड़ा और एक ही मंच पर अलग-अलग भाषाओं के गीत प्रस्तुत करके सांस्कृतिक एकता का शंखनाद किया।

'चेन्नई यूथ क्वायर' ने गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर की बंगला रचना 'आनंदलोके' से लेकर कन्नड़, तमिल और तेलुगू, रचनाएं प्रस्तुत कीं। इस वृंदगान दल को संस्कारित करने में संगीतकार स्व. एम.बी. श्रीनिवासन की मुख्य भूमिका रही थी। वर्तमान में राजराजेश्वरी शिवरामाकृष्णन इसकी निर्देशिका हैं। इसमें उन्होंने अपना स्वरचित हिंदी गीत भी प्रस्तुत किया। 'कलकत्ता यूथ क्वायर' की निर्देशिका रुमा गुहा ठाकुरा एक समर्पित संगीतकर्मी हैं। उन्होंने गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर, अतुल प्रसाद, काजी नजरुल इस्लाम, पं. रविशंकर, सलिल चौधरी आदि कई रचनाकारों की रचनाएं कार्यक्रम में प्रस्तुत कीं।

सुहर शिलांग से आए खासी लोकसंगीत के मर्मज्ञ चेस्टरफील्ड खोंगविर ने अपने दल के साथ, विशिष्ट संगीत रचनाएं प्रस्तुत कीं। क्वायर गाने की परंपरा वहां के चर्च में काफी विकसित हो चुकी है। पश्चिम की इस धार्मिक परंपरा को जनजातीय संगीत से जोड़कर चेस्टरफील्ड ने कई प्रयोग किए हैं। स्पेनिश गिटार के साथ पारंपरिक नगाड़ा शामिल करके वह विलक्षण ध्वनिप्रभाव उत्पन्न करते हैं। एक बात और सामने आई कि अधिकांश गीतों की लय-ताल एक जैसी थी और ताल का यह प्रयोग आज बस्तर के आदिवासियों में भी देखा जा सकता है। चेस्टरफील्ड की पत्नी हेलेन गिरि सुदक्ष गायिका हैं। उनके द्वारा प्रस्तुत खासी लोरी एक विलक्षण संगीत रचना के रूप में सामने आई!

अहमदाबाद से आए अतुल देसाई ने कंठ और वाद्य संगीत का एक मिला-जुला कार्यक्रम प्रस्तुत किया। अतुल देसाई पं. ओंकारनाथ ठाकुर के शिष्य हैं। वह अच्छे गायक हैं और रचनाकार भी। शास्त्रीयता के रंग में पगी उनकी रचनाओं में नाद उपासना, गणेश वंदना, वेणुनाद उल्लेखनीय थीं। रचना 'दृष्टिकोण' में विभिन्न कोणों से ध्वनि के स्वरूप प्रस्तुत किए गए। देसाई नृत्य-नाटिकाओं, नाटकों के पार्श्वसंगीत के संयोजन में कुशल हैं। इसकी गहरी अनुकृतियां उनके संयोजन में सुनने को मिलीं।



आर्मी बैंड का संचालन करते हुए नाजर हुसैन



एल. सुब्रमणियम के निर्देशन में एक वाद्यवृंद प्रस्तुति

जयशंकर प्रसाद की कामायनी के कुछ अंश शांति शर्मा ने प्रस्तुत किए! वह एक गंभीर शास्त्रीय गायिका हैं। शब्दों के सुस्पष्ट उच्चारण, और भावानुकूल स्वर संगति से उन्होंने उसके कई रूप दक्षता से प्रस्तुत किए।

मुंबई से आए फरीद करमाली ने जोसेफ पिंटो की वायलिन के साथ पियानो वादन प्रस्तुत किया। पश्चिम की परंपरा और आग्रह के अनुसार बिना स्पीकर, माइक्रोफोन की संगति से, निपट कान से संगीत के स्वर-माधुर्य को ग्रहण करना अच्छा अनुभव रहा। उनके वादन में निरंतरता है और कुशलता भी। उनके द्वारा प्रस्तुत तीन रचनाओं में 'सेल्जबर्ग' सूट अपनी ग्रीक स्वर संगति के कारण प्रभावोत्पादक रही।

इसी कार्यक्रम में आकाशवाणी चेन्नई के वाद्यवृंद ने कई अविस्मरणीय संगीत रचनाएं प्रस्तुत कीं। भारत में वाद्यवृंद की प्रयोगधर्मी शुरुआत का श्रेय संगीत-ऋषि उस्ताद अलाउद्दीन खां को जाता है—जिन्होंने 'मैहर बैंड' के नाम से इसकी स्थापना की और इस परंपरा में कई शिष्य तैयार किए। रचनाकार तिमिर बरन, पन्नालाल घोष, पं. रविशंकर आदि ने अपनी संगीत रचनाओं में इसी कलारूप को विस्तार दिया। आकाशवाणी द्वारा संगीत की प्रयोगधर्मी रचनाशीलता को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से पचास के दशक में दो वाद्यवृंद दिल्ली और मद्रास में आरंभ किए गए थे, जो आज भी कार्यरत हैं। आकाशवाणी चेन्नई वाद्यवृंद ने आरंभ पन्नालाल घोष की संगीत रचना 'पटदीप' से किया। बाद में वागेश्वरी, गौरी मनोहारी, नर्तकी और चंद्रकोस प्रस्तुत कीं। स्वर समन्वय, भावानुकूल अभिव्यक्ति और वादन की कुशलता उनकी प्रस्तुति में देखने-सुनने को मिली।

पश्चिम के अनेक वाद्यों को भारतीय संगीत ने लगभग आत्मसात-सा कर लिया है। हमारे शास्त्रीय संगीत में श्रुतियों की महीन परिकल्पना यद्यपि पश्चिम के वाद्यों को अपनाने में कई बाधाएं खड़ी करती है फिर भी अनेक पर्दे या स्थिर स्वर-समूह के मुक्त वाद्य जैसे वायलिन,

क्लारिनेट, सेक्सोफोन को कर्नाटक शैली और हिंदुस्तानी, दोनों ने अंगीकार किया और अनेक कलाकारों ने अपनी साधना से इन पर दक्षता हासिल की। वायलिन इनमें एक प्रमुख वाद्ययंत्र है जो हमारे संगीत समाज का अटूट हिस्सा बन चुका है। सुविख्यात कर्नाटक शैली के वायलिन वादक एल. सुब्रमणियम ने पाश्चात्य और भारतीय वाद्ययंत्रों की एक मिली-जुली रस-पगी बानगी प्रस्तुत की। नीग्रो संगीत की 'इंप्रोवाइजेशन' की अनंत स्वर-लहरियों के बीच ताल और कल्पना का नया आनंद-लोक उन्होंने रचा। पियानो सुगम संगीत की संगत के लिए अनुकूल है पर शास्त्रीयता का निर्वाह उस पर कठिन पड़ता है।

कलकत्ता के वी. बालसरा कुशल संगीत संयोजक और प्रवीण पियानो वादक हैं। सुविख्यात तबला वादक ज्ञानप्रकाश घोष के साथ उन्होंने सुंदर प्रस्तुतियां दी हैं। उन्होंने भी बंगाल के निपुण तंत्रवादकों के साथ ध्वनियों का एक अपूर्व संसार रचा, जो कई रचना शैलियों का मिला-जुला संगम था।

भारत में बैंड संगीत के प्रचलन का श्रेय ब्रिटिश आर्मी को ही जाता है। स्वाधीनता के पश्चात हमारी तीनों-नौ, वायु और थल सेना ने अपने-अपने बैंड दल तैयार किए। भारत में प्रचलित अनेक लोकधुनों को इसमें स्थान मिला। शास्त्रीय रागों के साथ-साथ स्वतंत्र रचनाएं भी कंडक्टरों ने की। पचमढ़ी में आर्मी बैंड का अपना स्कूल है जहां नए कलाकारों को तैयार किया जाता है और नई रचनाओं पर सतत प्रयोग और अध्ययन भी। वे अनेक वाद्ययंत्रों का समायोजन करते हैं पर मुख्यतः सुषिर वाद्यों तथा ताल के लिए ड्रम के प्रयोग से उनका रचना-रूप सामान्य से भिन्न होता है और मुश्किल भी। आर.के. गुरुंग और नाजर हुसैन के संयोजन में 'आर्मी बैंड' ने कई मार्च धुनें और नई रचनाएं, जैसे- नटराज, उत्कर्ष के अलावा राग भोपाली, सोहनी प्रस्तुत कीं, जिनमें वाद्यों के कल्पनाशील प्रयोगों के बीच अद्भुत समन्वय था।

'सृजन' में पुणे के सुविख्यात संगीतकार भास्कर चंदावरकर ने अपने दल 'रचना' के माध्यम से सुविख्यात मराठी कवयित्री आरती प्रभु की तीन विशिष्ट कविताएं प्रस्तुत कीं, वहीं मुंबई के अनिल मोहिले ने फिल्म संगीत के संयोजन की जीवंत झांकी प्रस्तुत की।

संगीत नाटक अकादमी का यह आयोजन काफी श्रमसाध्य और खर्चीला तो था ही, पर इसने भारतीय आधुनिक और समसामयिक संगीत की एक रंग-बिरंगी झांकी प्रस्तुत की। संगीत की कई कमजोरियों और समस्याओं को भी प्रस्तुत किया। इलैक्ट्रॉनिक संगीत और हमारे कोमल वाद्ययंत्रों के बीच टूटती और जुड़ती प्रायोगिकता की ओर भी सूक्ष्म संकेत इसमें मौजूद थे।

भारतीय संगीत के शिक्षण की कमजोरियां, रचनाशीलता और प्रयोगधर्मिता के प्रति अरुचि, कल्पनाशीलता में समन्वय तथा सामूहिक अनुशासन का अभाव आदि अनेक प्रश्नों की ओर श्रोताओं का ध्यान भी आकर्षित हुआ। वस्तुतः समवेत के शोर में एकरूपता की खोज ही 'सृजन' की उपलब्धि है। □

हमें क्या चाहिए?

पञ्जालाल पटेल

मुम्बरासी से अनुवाद : जोषालदास मजूमर

रेखांकन : राजेश नायकवाह



साहित्य-सम्मेलन में मेरे प्रवेश से चल रही बातों में कुछ असुविधा पहुँची। एक मित्र ने मुझे इशारे से बुलाया और मैं उस तरफ जाऊँ न जाऊँ, उससे पहले, दूसरे ने ताना कसा, “अच्छा ! आपने भी इस सम्मेलन में प्रवेश किया है।”

मैं यह तो जानता था कि कोई एक विद्वान जो कि भगिनी भाषा साहित्यिक मिलन में होकर आए हैं, वे आज भाषण देने वाले हैं। लेकिन उस मित्र के ताने से मैं समझ गया था कि इस वक्त वे कहीं देखे हुए किसी नाटक के बारे में बता रहे हैं। और मैं एकाग्रचित्त से वह सब सुनना चाह रहा था। विद्वान मित्र ने कहना शुरू किया-

“नहीं डियर...,” कहती हुई पत्नी प्रवेश करती है। ऐसा लगता है जैसे उसने विदेशी शराब खूब छककर पी हुई है। उसकी चुस्त पोशाक अधखुले अंगों के उभारों और उतारों को बखूबी दर्शा रही है। आँखों में कोई पदार्थ चमक रहा है। आते ही पति से किताब छीन लेती है और पास रखी हुई कुर्सी पर बैठ जाती है। कहती है, “तुम इस तरह ढीले होकर बैठ जाओगे तो मुझसे सहन नहीं होगा। मुझे तो गुजरते हुए एक-एक पल का आनंद लेना है, लुत्फ उठाना है।”

विद्वान मित्र ने बताया, “उसे एक क्लब में जाना है। सीट भी बुक करवाई है।”

“तुम्हें कौन मना कर रहा है,” युवक हंसता रहा, “सभी प्रकार की आजादी है तुम्हें!”

युवती चिढ़ गई, “कितने ठंडे हो तुम?”

“यह कहो कि शांत हूँ!”

युवक के पहलू में बैठी युवती सोफे से सहसा उठ खड़ी हुई। एक झटके से पास की अलमारी खोलती। एक पुस्तक निकालकर उसके पन्ने पलटते हुए युवक के सामने रख दी, “पढ़ो, यह एक अंग्रेज लेखक ने लिखा है- त्याग का दूसरा नाम अ-रसिकता है और इसी तरह मृत्यु का दूसरा नाम शांति है। है न?”

युवक ने युवती के सुमधुर चेहरे की तरफ देखा। हँसकर बोला, “फिर भी स्वस्थ हूँ।”

“असंगत बातें मत करो, हाँ।”

“विचारों का हर एक तंतु तुष्टि के साथ जुड़ा हुआ है, तुम्हारे इस एक पल की ही तरह।”

“तो फिर चलो, मौन का यह चोगा उतार

फेंको और मेरे साथ पहले की ही तरह जुड़ जाओ। उठो, डियर...।”

कलाई पर बंधी घड़ी की ओर देखते हुए लाचार आवाज में वह आगे बोली, “समय हो रहा है।”

“नहीं डार्लिंग, तुम जाओ। जहां तुम्हारा दिल चाहे, वहां जाओ। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठा हूँ। तुम वापस आओगी, तब तक। मैं देखना चाहता हूँ कि एक-एक पल का आनंद लेने के बाद तुम कैसी लगती हो?”

“कहां जाऊँ अकेली?” युवती की आवाज में झुंझलाहट थी, क्रोध था, बेबसी थी।

“जहां तुम्हें खुशी मिले, एकाध पल का भी आनंद मिले, वहां।”

“बकवास मत करो। साफ कह दो कि तुम मेरे साथ नहीं चलना चाहते।”

“बहुत बार चला हूँ। तीन साल अमरीका में, और दो साल यहाँ। अब नहीं।”

“यह क्यों नहीं कहते कि थक गए हो?”

“नहीं, अधा गया हूँ।”

“मुर्दों जैसी बात मत करो। उठो, चलो, अभी मेरा मन नहीं भरा है।”

“तो पहले तुम अपना मन भर लो, फिर मैं आ जाऊंगा।”

“देखो, अनंत! फिर उस दिन जैसा ही होगा।” शब्दों से अधिक उसके अंग मानो चेतावनी दे रहे थे।

“कहां कुछ हुआ है? पांच वर्ष से साथ ही तो हैं हम!”

“इसीलिए तो तुम्हें मनचाहा मिलता रहा है, लेकिन इस बार तो...”

“ऐसा करो...मेरे पास बैठो।”

“बैठकर क्या मिलेगा?”

“खो भी क्या जाएगा, डार्लिंग?”

“पांच वर्ष खो गए हैं।”

“और जनम तो न जाने कितने?” युवक बोला।

“इसीलिए तो अब मैं आनंद उठाना चाहती

हूँ।”

“तो जाओ फिर! गंभीर होकर युवक बोला, “तुम्हें आनंद लेती हुई देखना भी मेरे लिए एक अनोखी उपलब्धि बन जाएगी, जाओ।”

“तुम्हें सही में तलाक लेना है, अनंत?”

“लेना तो है, पर देता कौन है?”

“देखो तो, कैसे निष्ठुर हो?”

“क्यों? रो दोगी?” युवक ने गंभीरता से कहा।

युवती की आंखें इस बात की प्रतीति करा रही थीं कि आग की उत्पत्ति पानी में से हुई है। और रूठी हुई युवती पर्स लेकर सीढ़ियों की ओर जाती हुई बोली, “ठीक है, तो फिर जाती हूँ।”

“कहां जाओगी?”

“जहां दिल चाहेगा।”

“मेरी भी तुम्हें यही सलाह है, बल्कि आग्रह है...ओ. के.?”

लेकिन पत्नी दूसरी ही सीढ़ी पर खड़ी रह गई, ‘तुम मजाक समझ रहे हो?’

“समझ नहीं रहा हूँ, देख रहा हूँ।”

“यह कहो न, ऐसा करके मुझसे छुटकारा चाहते हो।”

युवक हंस पड़ा, “यह तो जैसे तुमने कोई नई बात कही? ऐसा ही है, डार्लिंग!”

“फिर तुम्हें दूसरी शादी करनी है न?”

“नहीं।”

“तो फिर?”

“तुम्हें दूसरे से विवाह करके फिर पल-पल आनंद लेती हुई मैं नजर भरकर देखना चाहता हूँ।”

“तुमने तो बहुत सुख दिया है- अब दूसरा क्या देगा?”

“तो फिर लौट आओ। दो ही सीढ़ी तो चढ़नी हैं।”

युवती तीखी नजर से देखती हुई बोली, “नहीं, चढ़ने की अपेक्षा उतरने में कम तकलीफ पड़ती है। तुम ही चलो न मेरे साथ!”

“क्यों? तुमसे मुर्दों को भी नहीं छोड़ा जाता?”

“आज हठ लेकर क्यों बैठे हो, अनंत?”

“आज ही मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ है।”

“कैसा ज्ञान?”

“तुम्हारे साथ होने पर भी मुझे हमेशा दूरी का अहसास होता रहता है, तुम्हारे उस पल की तरह।”

पत्नी रोष में आकर बोली, “अब तो तुम कहोगे तो भी मैं लौटकर नहीं आऊंगी। ये दो ही सीढ़ियाँ हैं, लेकिन हैं नरक की।”

युवक ने हंसकर कहा, “तुम वापस नहीं आओगी, यह जानकर तो कहता होऊंगा तो भी नहीं कहूंगा।”

“मजाक समझ रहे हो?”

“एक ही प्रश्न अभी-अभी दो बार पूछ लिया? तुम जाओ, तुम्हें देर होगी। क्लब की आरक्षित सीटें तुम्हारी प्रतीक्षा में निःश्वास ले रही होंगी।”

“तो फिर याद रखो, मैं वापस नहीं आऊंगी!”

“जरूरत पड़ी तो कोर्ट में मिलेंगे।”

“यह बात है?” युवती क्रोध से होंठ दबाती सीढ़ियाँ उतर रही थी।

अभी कुछ ही क्षण बीते थे कि युवती खट-खट सीढ़ियाँ चढ़ती, आंघी की तरह कमरे में लौट आई। युवक ने उतने ही ठंडेपन से पूछा, “क्यों, क्या हुआ?”

उत्तर देने के बदले क्रोधित पत्नी अटैची उठाकर उसमें कपड़े भरने लगी। अटैची भर गई।

युवक उठता हुआ बोला, “ऐसा करो, लाओ, मैं तुम्हारी मदद करूँ?” और वह सीढ़ियों की ओर मुड़ गया।

कुछ देर बाद पत्नी ने देखा तो वास्तव में पति नहीं था। उसने आवाज लगाई, “अनंत ...अनंत! मजाक मत करो! मैं रो पड़ूंगी, हाँ!” और सोफे पर लुढ़क गई। बेहोशी-सी आ गई।

और होश आने पर देखा- अनंत बैठा उसे सहला रहा है। उसकी तरफ आंखें स्थिर कर बोली, “तुम आ गए, अनंत?”

तीन गजलें : शमशीर संगली

एक

दो

तीन

मैं भी बेघर हूँ, तू भी बेघर है
अब तो दोनों का एक मुकद्दर है

मेरी खातिर जो मिसले खंजर है
गैर कब है, मेरा बिरादर है

सब के सब मसलेहत के मारे है
आइना है न कोई पत्थर है

काम आती है हम गरीबों के
आस्मां से जमीन बेहतर है

जंग मैं क्यों करूँ जमाने से
नाम मेरा कोई सिकंदर है

उनकी फुर्कत का गम न कर शमशीर
आशिकों का यही मुकदर है!

फिर गए हम जो पारसाओं में
लुप्त आने लगा खताओं में

शामिले हाल है करम तेरा
जल रहा है दिया हवाओं में

लड़कियाँ कामयाब होती है
रहके किरदार की रिदाओं में

जाने वाले न भूलना हरगिज
याद रखना हमें दुआओं में

झोंपड़ों में है रोशनी अब भी
है अंधेरे महलसराओं में

लाख उसने जफाएं की शमशीर
की न हमने कमी वफाओं में!

याद करना तुझे बुरा तो नहीं
इस खता की कोई सजा तो नहीं

छोड़ भी देता याद करना तुझे
पर कोई और रास्ता तो नहीं

तोड़ना दिल को बार-बार मेरे
आपका ये हुनर नया तो नहीं

लौटकर आ जा हमसफर मेरे
इतना दुश्वार रास्ता तो नहीं

हमको माना हरीफ क्यों सबने
इसमें कोई तेरी रजा तो नहीं

आज क्यों खुश है ये गली शमशीर
वो इधर से अभी गया तो नहीं!

“मैं कहाँ गया था?”

“क्यों, मुझे छोड़कर चले नहीं गए थे तुम?”

“किसने कहा?”

“देखो, झूठ मत बोलो।”

“मुझे तुम पर दया आती है!”

“दया ही आती तो मेरे साथ न चले होते?”

तभी दरवाजे पर आहट हुई। टैक्सी ड्राइवर था।

“चलिए साहब, दो मिनट को कहा था, लेकिन शायद भूल ही गए कि बाहर टैक्सी खड़ी है!”

पत्नी ने पति से पूछा, “अनंत! यह सब क्या है?”

अनंत ने ड्राइवर से कहा, “जाओ, मैं अभी आता हूँ।”

और ड्राइवर के चले जाने के बाद पति ने कहा, “देखो डार्लिंग, यदि तुम्हें हर क्षण का आनंद लेना ही है तो टैक्सी खड़ी है और जहाँ तुम्हारा दिल चाहे, एक-एक पल उसे तुम...”

“मेरे लिए टैक्सी बुला लाए हो?” पत्नी की आंखें फटी की फटी ही रह गई, “सचमुच, तुम मुझे भेज देना चाहते हो?”

“मैं जो पूछता हूँ, उसका जवाब दो। जैसा तुम कहती हो, सही मैं तुम वैसे जीवन का आनंद उठाना चाहती हो? जब आनंद ही लेना है, तो जिगर थाम के निकल पड़ो...”

युवती की जैसे जान ही निकल गई, “वास्तव में तुम मुझे निकालना ही चाहते हो?”

“निकालना नहीं, देखना चाहता हूँ।”

“क्या?”

“जो पल-पल का आनंद लेते हैं, उनकी शकलें कैसी होती हैं?”

“सही में...तो तुमने अमरीका के लोगों को नहीं देखा है?”

“मुझे के शब्दों में कहूँ तो मिथ्या प्रयत्न करते देखा है। बाकी भगवान जाने, पल-पल का आनंद लेने वालों की शकलें कैसी होती हैं? मैं तो कल्पना तक नहीं कर सकता। अगर कल्पना आती भी है

तो एक स्थिति की, आनंद की- लेकिन तुम्हारी बात भिन्न है। और इसीलिए मैं तुम्हें आनंद लेती हुई देखना चाहता हूँ!” और कुछ क्षण ठहरकर आगे बोला, “तुम शायद मजाक कर रही हो। मैं नहीं कर रहा हूँ।”

नीचे से पुनः ड्राइवर ने आवाज लगाई, “अरे साहब, कहाँ रह गए?”

“चलो डार्लिंग, कहाँ है तुम्हारा सामान?”

“अनंत...!” कहती हुई पत्नी उससे लिपट गई।

ड्राइवर ने फिर से आवाज दी, “कहाँ गए, साहब?”

और अनंत कोमलता से, अपने आप को पत्नी से अलग करता हुआ बोला, “अरे...लेकिन टैक्सी वाले को पैसे देकर जाने के लिए तो कह दूँ!”

“नहीं, तुम नहीं...मैं जाती हूँ।” और पर्स लेकर नीचे उतर गई।

अनंत बुदबुदाया, “लगता है, हम स्वयं नहीं जानते, हमें क्या चाहिए?” □

स्थापित मानकों को लांघने की चुनौती

जिस जमाने में शिवप्रसाद सिंह कथा-साहित्य में सक्रिय हुए थे, उस जमाने में यथार्थवाद का बोलबाला था। प्रेमचंद और प्रसाद जैसे पूर्ववर्ती कथाकारों के मानकों को लांघने की चुनौती भी थी। शिवप्रसाद सिंह के समकालीन ऐसा करने का उपक्रम भी कर रहे थे। मगर शिवप्रसाद जी ऐसा नहीं कर रहे थे। उनमें अपने पुरखों से आगे निकल जाने की बेचैनी थी और वह इसके लिए लगातार प्रयास भी करते रहे। कथाकार-उपन्यासकार शिवप्रसाद सिंह के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रदीप तिवारी

वाराणसी में गुरुधाम कालोनी में स्थित शिवप्रसाद सिंह के आवास 'सुधर्मा' के उस कक्ष में अब स्थायी सन्नाटा पसर गया है, जहां विगत कई वर्षों से हिंदी कथा के उस वरिष्ठ लेखक की मौजूदगी जीवंत रही। उनके ठहाके और वाक् वैभव जिस कमरे में नित्य फैले होते, उस कमरे में अब खामोशी है। वह इसी कमरे में सृजनरत भी रहे। इस बड़े कमरे की चौकी, जो किताबों से आधी भरी पड़ी है, अब निःस्वामी हो गई है। इस पर पड़ी चादर पर कत्थे और स्याही के दाग हैं, जो बताते हैं कि यहां शिवप्रसाद सिंह रहे और सक्रिय रहे। कभी यही कमरा उनकी गप-शप का भी गवाह हुआ करता था। इस कमरे को शिवप्रसाद सिंह 'लेखक का कारखाना' कहते थे। अब यह कारखाना अपने शिल्पी की अनुपस्थिति से वीरान हो गया है।

सन् 1928 में बनारस के जलालपुर ग्राम में एक सभ्रांत मध्यवर्गीय कृषक परिवार में उनका जन्म हुआ। आरंभिक शिक्षा गांव में हुई और इंटर से लेकर सारी उच्च शिक्षा वाराणसी में पूरी हुई। इंटर की पढ़ाई के दौरान ही उनके भीतर लेखन के प्रति एक विशेष सम्मान पैदा हुआ। उस समय उन्होंने एक निबंध लिखा, 'तंत्रमात्राओं का लोक'। इस निबंध का प्रकाशन कालेज की पत्रिका में हुआ। यही उनका प्रथम लेखन था।



निबंध की भाषा काफी तत्सम थी। त्रिलोचन जी ने उस निबंध को पढ़ा तो कहा- ऐसी भाषा नहीं चलेगी। यह मरी हुई भाषा है। इस बात से शिवप्रसाद सिंह को काफी दुख हुआ। लेकिन दो-चार दिन बाद उन्होंने महसूस किया कि बात सही है। फिर उन्होंने भाषा साधने और तब कुछ रचने का संकल्प लिया। उन्होंने पहली कहानी तब लिखी जब वह बी. ए. के छात्र थे और हिंदू विश्वविद्यालय में आ चुके थे। 'दादी मां' शीर्षक यह कहानी 1959 में प्रतीक पत्रिका में छपी। पत्रिका के संपादक अज्ञेय ने कहानी छापते हुए यह टिप्पणी लिखी थी कि जिन लोगों को कहानी लिखने के प्लॉट नहीं मिलते, वे 'दादी मां' कहानी से प्रेरणा ले सकते हैं। इस कहानी को कुछ आलोचक हिंदी में 'नई कहानी' की पहली रचना भी मानते हैं।

आरंभिक वर्षों में स्व. शिवप्रसाद सिंह ने कहानियां ही लिखीं। बाद में उन्हें लगा कि कहानी की यह विधा उनकी समग्र अभिव्यक्ति के लिए कम पड़ रही है तो वह उपन्यास की ओर मुड़े। उनका उपन्यास *अलग-अलग वैतरणी* ग्रामकथा के विशिष्ट संदर्भों के चलते चर्चित हुआ। जिस जमाने में वह कथा-साहित्य में सक्रिय हुए थे, उस जमाने में यथार्थवाद का बोलबाला था। प्रेमचंद और प्रसाद जैसे पूर्ववर्ती कथाकारों के

मानकों को लांघने की चुनौती भी थी। शिवप्रसाद सिंह के समकालीन ऐसा करने का उपक्रम भी कर रहे थे। मगर शिवप्रसाद जी ऐसा नहीं कर रहे थे। वह प्रेमचंद को दूसरे दर्जे का लेखक मानते थे। अपने एक साक्षात्कार में शिवप्रसाद सिंह ने कहा है- 'मैं प्रेमचंद को एक गुड सेकेंड क्लास का कथाकार मानता हूँ - विशेषकर शिल्प के धरातल पर। क्योंकि मुझे लगता है कि उनके पास शिल्प था ही नहीं।' वह साफ-साफ कहते थे- 'मेरा रास्ता प्रेमचंद से होकर शुरू नहीं होता।' यह शिवप्रसाद सिंह का दंभ नहीं था, बल्कि अपने पुरखे से आगे निकल जाने की बेचैनी थी और वह इसके लिए लगातार प्रयास भी करते रहे। ऐसा प्रयास उन्होंने अपने गुरु हजारी प्रसाद द्विवेदी से आगे निकल जाने के लिए भी किया। पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों के मानक को भी उन्होंने चुनौती के रूप में लिया और अपने उपन्यासों का सृजन कर यह सिद्ध भी किया कि इस चुनौती का उत्तर भी वह दे सकते थे। उन्होंने यह उत्तर *नीला चांद* और *वैश्वानर* लिखकर दिया।

नीला चांद एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास पर उन्हें साहित्य अकादमी सहित कई सम्मान मिले। विद्यानिवास मिश्र ने अपने एक व्याख्यान में ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की उनकी क्षमता की इतनी अधिक प्रशंसा कर दी है कि वह सिर्फ दो ही लोगों को ऐतिहासिक उपन्यासकार मानते हैं, पुस्तकों में राखालदास और नयों में शिवप्रसाद सिंह को। बाकी बीच में किसी लेखक को भी नहीं। हालांकि यह प्रशंसा की अति है, पर यह भी सच है कि शिवप्रसाद सिंह के ये उपन्यास विधा की परंपरागत धारणा का थोड़ा अतिक्रमण भी करते हैं। *नीला चांद* पर खुद शिवप्रसाद जी की टिप्पणी थी- 'यह उपन्यास, विधा से आगे निकल जाने में सफल है।'

शिवप्रसाद सिंह अपनी पसंद-नापसंद के बारे में आजीवन बेबाक रहे। उन्हें अज्ञेय का लेखन पसंद नहीं था। प्रसाद की भाषा के बारे में वह कहा करते थे- 'प्रसाद की भाषा कभी भी हिंदी में कथा-साहित्य की भाषा नहीं बनेगी।' मगर शरतचंद्र उन्हें बेहद पसंद थे। वह कहते थे- 'शरतचंद्र के लेखन में भावुकता और मार्मिकता का संयोग मिलता है, प्रेमचंद इस मायने में शरत से बड़े नहीं थे।'

शिवप्रसाद सिंह का यही बेबाकपन उन्हें लोगों से दूर करता रहा। अपनी साफगोई के चलते वह कभी-कभी अव्यावहारिक भी लगते थे। बहुतां को यह शिकायत रही कि उनका व्यवहार अक्सर रूखा होता था। मगर वह अपने आत्मीयों से कहा करते थे- 'सर्जक को अपने भीतर भी कभी-कभी गुम रहना चाहिए।' वह अक्सर अपने भीतर की दुनिया में गुम हो जाया करते थे और जब सर्जक मुद्रा से मुक्त होते थे तो जमकर संवाद भी स्थापित करते थे।

जरूरी नहीं होता था कि उनका संवाद सदा सार्थक संवाद ही हो। वह चुहल भी किया करते थे। प्रेमचंद के उपन्यास *गोदान* के बारे में उनकी कभी-कभी कुछ अजीब टिप्पणी होती थी। एक बार उन्होंने कहा- '*गोदान* के होरी की इच्छा प्रेमचंद की इच्छा से मेल खाती थी। प्रेमचंद की इच्छा थी सरस्वती प्रेस खोलने की, जो कभी पूरी नहीं हुई,

वहीं होरी की इच्छा है एक गाय की, जो कभी पूरी नहीं हुई।'

यह एक चुहल है। एक ऐसी तुलना जो निरर्थक है, मगर शिवप्रसाद सिंह यह सब गढ़ते थे तो उनके भीतर अक्सर किसी गंभीर रचना की तैयारी चलती रहती थी। जो लोग इस बात को नहीं समझ सके, उन्होंने शिवप्रसाद जी के बारे में उनके जीवन-काल में ढेरों गलतफहमियां पाल लीं।

जीवन-काल में शिवप्रसाद जी की कई कृतियां आईं। इनमें ग्यारह कहानी संग्रह, आठ उपन्यास, छः ललित निबंध संग्रह, एक नाटक, आठ आलोचना संग्रह और एक रिपोर्टेज संग्रह प्रमुख हैं। 'मैं कहां-कहां खोजू' शीर्षक से उन्होंने एक उपन्यास लिखा है, जो प्रकाशनाधीन है। कबीर को केंद्र में रखकर वह *अनहद गरजै* नामक अपनी रचना शुरू कर चुके थे, जो अब अधूरी है। इसी तरह कुंआर सिंह के जीवन को केंद्र में रखकर भी एक उपन्यास लिखने की उनकी योजना थी, जो अब कभी पूरी नहीं होगी। डाक्टर शुकदेव सिंह के अनुसार उन्हें अपने समकालीनों में बाकी उपलब्धियां देर से हासिल हुईं, मगर मृत्यु पहले ही मिल गई। □

आजकल की विज्ञापन दरें

	अनियत	चार या अधिक निवेशन के लिए
पूरा पेज	1300.00	1000.00
आधा पेज	800.00	600.00

विशेष कवर पोजीशन

अंतिम आवरण	2500.00	2300.00
दूसरा आवरण	1900.00	1600.00
तीसरा आवरण	1500.00	1300.00

रंगीन अधिभार : प्रत्येक रंग के लिए 33.3 प्रतिशत

अतिरिक्त (केवल चार रंगों तक सीमित)

विस्तृत जानकारी के लिए संपर्क करें :

विज्ञापन व्यवस्थापक

प्रकाशन विभाग

ईस्ट ब्लॉक-4, लेबल-7, रामकृष्णपुरम,

सेक्टर-1, नई दिल्ली-110065

फोन : 6105590

सामाजिक सरोकारों के बिना बड़ी कृतियों का जन्म नहीं होता!

कथाकार शिवप्रसाद सिंह से कुमार विजय की बातचीत

अपनी विशिष्ट शैली, इतिहास और कालबोध, सामाजिक सरोकारों के प्रति प्रतिबद्ध नजरिए के माध्यम से हिंदी कथा जगत और उपन्यास संसार में अपनी अलग पहचान रखने वाले वरिष्ठ कथा लेखक शिवप्रसाद सिंह अपने निधन के कुछ माह पूर्व तक सृजन संकल्प और ऊर्जा से ओत-प्रोत थे। अपनी घोषणानुसार 'काशीत्रयी'-काशी की पृष्ठभूमि पर तीन उपन्यासों की शृंखला-का अंतिम उपन्यास *वैश्वानर* उन्होंने पिछले वर्ष ही पूरा किया था। हिंदी जगत में यह सहज जिज्ञासा का विषय रहा था कि काशीत्रयी- *गली आगे मुड़ती है*, *नीला चांद* और *वैश्वानर* के बाद शिवप्रसाद सिंह क्या कुछ लिख रहे हैं? इसी जिज्ञासा के वशीभूत उनसे एक लंबी बातचीत की गई जिसमें डा. सिंह ने हिंदी जगत की भ्रांतियों और रूढ़ियों से लेकर अपनी रचना प्रक्रिया के महत्वपूर्ण आयामों के साथ अपने नए उपन्यास 'अनहद गरजै' की, जो वह कबौर पर लिख रहे थे, वृहद चर्चा की है। यह संभवतः उनका अंतिम साक्षात्कार था। प्रस्तुत है बातचीत का एक अंश :

आपकी काशीत्रयी पूरी हो चुकी है। इन दिनों आप क्या लिख रहे हैं?

हमारे यहां 1988 उपन्यासों की दुनिया में बदलाव लेकर आया। मेरे उपन्यास *अलग-अलग वैतरणी* (1967), *गली आगे मुड़ती है* (1968) में दिक्कतें आई और संत्रास में मैं जीता रहा। 1988 के बाद मेरे दो उपन्यास *नीला चांद* और *वैश्वानर* आए। लोग-बाग पूछते हैं कि इतनी देर क्यों? तो हंसी आती है। तो मैं कहता हूँ कि मेरे उपन्यासों का उद्देश्य कोई चरित्र लाना नहीं है। मैं पूरे एक पीरियड को उभारता हूँ। जहां कहीं कुछ काम नहीं हुआ है, उस पर जानकारी लेना, अन्वेषण करना, चीजों को तय करना और फिर जब वह सब तैयार हो जाता है तब वह औपन्यासिक-रासायनिक प्रक्रिया में होता हुआ आता है। तो मुझे एक उपन्यास लिखने में कम से कम तीन साल लग जाते हैं। हिंदी में लोगों को भाषा बहुत डराती है। मेरा उपन्यास 1988 में छपा और उसका काल 1007 तक है। तो मैं कैसे बुलवा दूँ उस जमाने के ब्राह्मण के मुख से भोजपुरी? या एक मुसलमान के मुख से संस्कृत? कैसे होगा?

अब मैं इन दिनों कबौर दास पर एक उपन्यास लिख रहा हूँ... 'अनहद गरजै' शीर्षक जान-बूझकर मैंने दिया। अनहद नाद या अनहद... मैं दार्शनिक कुंडलिनी जागरण आदि नहीं मानता। अनहद निरंतर चलने वाली एक प्रक्रिया

है, जो संत-योगी की बातें हैं। जो उसको पा जाता है, सबमुच का पा जाता है वह बिना किसी से डरे हुए निरंतर गूंजता ही रहता है।

नीला चांद के ठीक बाद मैंने दो उपन्यास लिखे- *कोहरे में युद्ध* और *दिल्ली दूर है* तो... अभी दो साल पहले इलाहाबाद संग्रहालय में इतिहास और वृंदावन लाल वर्मा पर एक लंबी-चौड़ी दो सत्र की परिचर्चा गोष्ठी हुई। उसमें श्रीलाल शुक्ल ने कहा था- असल में वह मेरे कुछ तीखे आलोचक ही हैं... प्रशंसा बहुत कम करते हैं लेकिन उन्होंने कहा कि- 'मैंने वृंदावन लाल वर्मा के उपन्यासों में लड़ाइयों का और युद्ध का वर्णन देखा है, हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में देखा है। कोई भी ऐसा हिंदी उपन्यासकार नहीं है जिसका मैंने कोई उपन्यास, जिसमें ऐतिहासिकता है और उसमें युद्ध का वर्णन है, मैंने देखा न हो ध्यान से।' दूसरी चीज यह बताऊँ कि श्रीलाल शुक्ल बहुत 'वैलरेड' हैं, विदेशी उपन्यासों का बहुत अच्छा अध्ययन है उन्हें। उन्होंने टालस्टाय के *वार एंड पीस* का भी नाम लिया था। उन्होंने कहा कि- 'एक लड़ाई जो राज्य लड़ रहा है वह जन-जन की लड़ाई कैसे बन गई और मैं सोचता रहा कि *कोहरे में युद्ध* के लेखक ने किया क्या, कैसे किया इसको! तब मुझे लगा कि यह तो विचित्र है। यह तो सेनापतियों की रणनीति है। उसके तई जनता सहयोग देते हुए भी शामिल नहीं है।' मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मान लीजिए, मेरे पास कुछ नहीं है। दो ही बकरियां हैं। दूसरों के लिए जो चीजें महत्वपूर्ण हों-हों... लेकिन एक गरीब व्यक्ति के लिए बकरियां बहुत महत्वपूर्ण हैं। उनको बचाकर ले आना उसकी एकमात्र फितरत हो जाती है।

तो शुरू तो मैंने किया था कि सात सौ बरस हो गए हिंदू-मुसलमानों को साथ-साथ रहते हुए लेकिन ये दोनों समुदाय साथ-साथ रह क्यों नहीं पाते हैं? वहां से लेकर और बलबन तक के समय तक यानी गुलाम वंश का राज्य जो कहलाता है, उसको मैंने रखा। जिस समय मुझे व्यास सम्मान मिला था, तब हमारे एक प्रशंसक और अंतरंग मित्र ने लिखा कि धर्मांधता के बिना, सांप्रदायिकता के बिना, समाज की उत्तेजना और उससे होने वाली लड़ाइयों के बिना क्यों ये उपन्यास इतना खींचते हैं, और इससे लगता है कि दोनों मुसलमान और हिंदू की यही चाहत है कि हम आपस में मिलकर रहते तो कितना अच्छा होता। क्यों नहीं मिल सके, यह अलग प्रश्न है।

यह तो आप दिल्ली दूर है के बारे में बता रहे हैं न?

हां, उसी को देखने के बाद। उन दोनों उपन्यासों को लिखने में मैंने

जो सामग्री एकत्र की। अब जैसे ...मैं भी मानता हूँ कि कुछ दोहे और देशी भाषा के गीत खुसरो ने बहुत अच्छे लिखे, संगीत में उनकी बड़ी देन है। लेकिन जब वह अल्लाउद्दीन के साथ इतिहासकार के रूप में चलते हैं तो धर्माधता से ग्रस्त लगते हैं। कई लोगों ने लिखा है। साही जी की किताब है... *जायसी*। वह भी हुई है खुसरो की धर्माधता पर। नामवर सिंह का एक निबंध *जनसत्ता* में छपा था... 'जनता का कवि खुसरो'... और बाकी हिस्ट्री देखकर उन्होंने भी वही लिखा कि लगता है कि वह इस्लाम का झंडाबरदार है...। यह सत्य है, लेकिन मैंने उसको इतना धुणित नहीं रहने दिया। क्योंकि आखिरकार एक साहित्यकार है वह... कहीं न कहीं।

सुफियों का, संतों का बड़ा जिज्ञासु है। कितना मुश्किल हो गया था। उस आदमी के लिए शुरू में तो हुआ कि मस्जिद भी बेकार, मंदिर भी बेकार और जो सत्य है वह तुम्हारे भीतर है, उसी में पाओ। जो कुछ मिलता है। मुझे भी यह सिद्धांत पसंद है क्योंकि यह भारत की खुद की अपनी निजी सोच की प्रक्रिया की देन है। तो हमने देखा कि खुसरो के जमाने में ही एकमात्र व्यक्ति ऐसा था जो साल में चार बार उर्ध्वपुंड लगाता था क्योंकि यंदावन में तब तक कृष्णभक्ति का वह रूप प्रकट नहीं हुआ था। यह अकबर के जमाने में आने के बाद हुआ था। लेकिन नामदेव एक निर्गुण संत और बहुत ही अच्छे जानकार थे। उन्हें मुसलमानी धर्म की धियोलाजी का बहुत अच्छा ज्ञान था। उस समय यही केवल एक था जिसमें विद्रुल पंचक्रोशी यात्रा जब होती है तो वहां उर्ध्वपुंड (तिलक) लगाते हैं... और चूंकि तीन-चार बार वह वारियां यानी यात्रा करते हैं इसलिए उस संप्रदाय का नाम ही बारदी (या वारदरी) है। खुसरो की एक कच्चाली का हिस्सा है कि *प्रेम भटी का मदवा पिया के, छापा तिलक छीन लीन्ह: हो मोसे नैना मिला के...* तो क्या निजामुद्दीन औलिया जैसा आदमी टालरेट नहीं कर सकता यहां तक कि नामदेव को? और इस असहनशक्ति का कोई अंत नहीं है। इतना भय व्याप्त था। यह भय अपने चरम बिंदु पर आपको मिलेगा लोदी वंश के सिकंदर लोदी में। हालांकि उसकी मां सुनारिन थी, हिंदू थी। लेकिन अजीब बात है कि दो-तीन ऐसे मुसलमान शासक हुए हैं इस देश में जिनकी माताएं हिंदू थीं- कोई मेवाती तो कोई सुनारिन थी; लेकिन वे सबसे अधिक खूंखार और सबसे अधिक कट्टर निकले। तो सिकंदर लोदी तो कबीर को चबा जाने के लिए चारों ओर से घेराव कर रहा था। उस समय जब एकदम निराशा थी हिंदू जाति में, उसके संतों में, उसके अन्य विचारकों में इतना डर और संशय था; फिर कबीर ने उस जमाने में कैसे कहा कि *पाहन पूजे हरि मिलैं तो मैं पूजू पहार या मस्जिद चढ़ि के बांग दे कहे बहरा तेरा खुदाय* कहा। कई मिलेंगे आपको ऐसे टुकड़े जिनमें उन्होंने कहीं भी उस से मस होना स्वीकार नहीं किया। इस फार्मूले पर कबीर हमेशा डंटे रहे कि दोनों के भीतर का जो प्रदर्शन है, कर्मकांड है, पाखंड है- मैं उसको चलने नहीं दूंगा। ऐसा जबर्दस्त चरित्र उन दस सालों के भीतर- जब मैंने दोनों उपन्यास लिखे थे- मुझे दिखाई नहीं पड़ा।

तब मैंने कहा कि घोषणा तो मैंने कारीगरी की की है। कारीगर तीन उपन्यास *गली आगे मुड़ती है*, *नीला चांद* और *वैश्वानर* तो हो गए। लेकिन हमने सोचा कि यदि समय मिला तो कुछ उपन्यास औरों पर भी लिखूंगा, उनमें कबीर नंबर वन होंगे- और 'अनहद गरजै' होगा उसका नाम।

तो उसी सोच ने, उसी सामाजिक संवेदना ने मुझे इतना झकझोर दिया कि मुझे लगा कि कबीर पर कुछ हो। लेकिन सबसे बड़ी स्थिति यही हुई

कि हम उस कहानी को कहां से शुरू करें? बीच से तोड़कर बाकी चीजें प्लैश बैक मैमोरी में ले आए, कौन-सी चीज पावरफुल कैसे हो सकती है? पहले जो सोचा था, शुरू करने वाला था, वहां से वह नहीं हुआ। वह बाद में पढ़ने पर पता चला कि यहां से होना चाहिए। वह था तैमूर लंग का भारत पर आक्रमण! एक साथ दिल्ली में कत्लेआम पचास लाख से अधिक मुसलमानों का वध। देश में भयानक अकाल और जिस दिन तैमूर लंग हिंदुस्तान को लूटकर, ध्वस्त करके लौटता है, उसी तारीख को कबीर का जन्म होता है।

तो यहां से आपने शुरू किया?

हां, तो हमको ब्रेकिंग में लगा कि एक अंधेरे पदों के सामने से कबीर को हम ले आए- नई रोशनी के साथ। तैमूर लंग क्यों चला गया? मैं नहीं कह रहा हूँ कि कबीर के कारण चला गया, लेकिन नियति ने जैसे भी हो, उसके जाने वाले दिन को ही- जहां भारत की सुरक्षा थोड़ी-सी दिखलाई पड़ी-उसी दिन को चुना। तो हमको लगा कि कबीर उसी दिन पैदा हुए। इसका बड़ा मतलब है। अजीब चीज है। मैं अपने उपन्यासों में कुछ और लिख रहा होता हूँ कि अचानक नया प्लैश आता है और मैं वहां मोड़ देता हूँ और उस मोड़ के साथ ऐसा अनछुआ, ऐसा अदृश्य एक प्रेरणा स्रोत होता है कि उससे वह लेखन परवान चढ़ता है।

एक चमत्कार जैसा...!

हां, लेकिन वह चमत्कार होता नहीं। रचना प्रक्रिया का ही एक हिस्सा है, लेकिन वह बहुत ही सशक्त होता है। मेरे साथ यह नहीं है कि मैं दस उपन्यास रखकर ग्यारहवां तैयार करूं। मैं सामग्री स्वतः वैज्ञानिक तरीके से जैसे चुनी जानी चाहिए, चुनता हूँ; फिर उसमें कितना निजी और कितना उद्भावना का संगम, संग्रह और संतुलन होना चाहिए- वह बाद में होता है। चीज वहीं से शुरू होती है। तो उसी तरह से यह घटना हुई कबीर के साथ.. जिस दिन तैमूर लंग लौटा, उस समय भारत अकाल में मर रहा था। तैमूर लंग के जाने का स्वागत नहीं। हमको तो यह दिखाना है कि उसने भारत को क्या बना दिया। लोग मक्खियों की तरह मर रहे थे। उसने उनको लूटा, कत्लेआम किया - चालीस लाख तो एक साथ मुसलमान मारे गए, हिंदुओं की तो गणना ही नहीं। ऐसी परिस्थिति में यदि कोई आदमी आए और सलकारता हुआ आए और लगे कि एक अंधेरा था जो तैमूर लंग लाया था; एक अंधेरा तो उसके पहले वाले सल्तनतकालीन लोग लाए थे। तो इन सब अंधेरों के बीच अचानक एक ऐसे चमकीले बच्चे का जन्म हुआ, ज्योति का जन्म हुआ तो यह मुझे ज्यादा जमा।

अच्छा, यह बताएं कि एक लेखक के रूप में कबीर की आज के समय में प्रासंगिकता आप महसूस कर रहे होंगे... लकी आप उन पर यह उपन्यास लिख रहे हैं; तो वह किस रूप में आप देखते हैं?

बिल्कुल! कबीर ही क्यों, विश्व में देखिए तो प्रायः सभी बड़े साहित्यकार कहीं न कहीं से चीजें कहते हैं, करते हैं। फिर तत्कालीन समाज उनकी प्रतिक्रिया में कई-कई बातें कहता है। कबीर को ठीक उनके बाद में आने वाले पचास वर्ष बाद तुलसीदास ने पढ़ा। कबीर ने तो तुलसीदास को नहीं पढ़ा, तुलसी दास ने कबीर को पढ़ा। तो तुलसीदास जब यह लिखते हैं कि *साखी सबदी दोहरा कह कहनी उपखान, भगत निरूपई मूढ़ मति निंदइ*

वेद पुराण... यह सीधा अटैक है कबीर पर...। कबीर ने लिखा कि... दशरथ सुत तिहँ लोक बखाना... राम नाम का मरम है आना... उस पर तुलसीदास ने अटैक किया दुबारा और उन्होंने कहा कि हे उमा तुमने जो पुनः अभी राम के भगवान होने में संशय दिखाया है एक बात नहीं मोहे सुहानी यद्यपि भ्रमवश कह्यो भवानी, तुम जो कहउ राम कोउ आना... तो उन्होंने यह कोटेशन तक उठा लिया। तुलसीदास की जैसी प्रतिष्ठा बनारस के पूज्य ब्राह्मणों ने की वैसी प्रतिष्ठा तो कबीर की नहीं हुई। क्योंकि कबीर के साथ जीने-मरने वालों का एक पूरा दल था। और वह जो दल था वह सगुणी पढ़े-लिखे लोगों का नहीं था, निर्गुणियों का था और उसके साथ सबसे बड़ी शक्ति थी अपने सामाजिक सरोकार को देखते हुए। कबीर अगर चाहते तो राम का ही मंत्र चाहिए था उनको अगर तो किसी और से ले सकते थे। लेकिन कुछ चीजें ऐसी हैं हिंदुत्व की जिनका कबीर समर्थन करते हैं- जैसे कि बिनु गुरु होहिं न ज्ञान, बिना गुरु के ज्ञान नहीं होगा और गुरु अगर अनजान में भी शरीर पर चरण रख दे तो वह गुरु हो गए। तो ऐसे ही गुरु उन्होंने चुना। और फिर पंचगंगा घाट, कबीर के जमाने में प्रतिदिन संध्या को कबीर के पद, बानी और साखी- इनको गाने का चलन था। उस जमाने में होते हुए भी जितनी

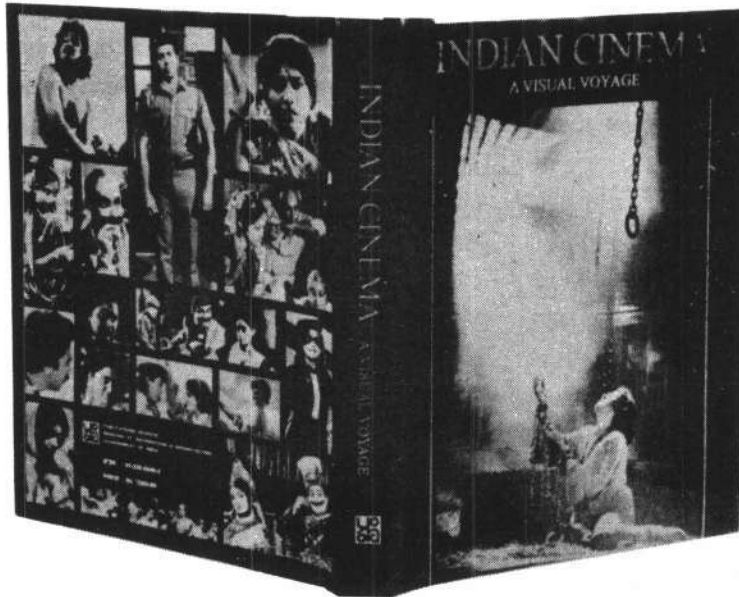
जकड़बंदियां थीं- उनके चलते कबीर जैसा आदमी कैसे जी पाया।

कबीर में देखने लायक चीज थी- सरोकार। मेरे मन में इस समय कबीर छा गया है और कोई भी घड़ी बिना कबीर को सोचे नहीं रह पाता। भले ही अस्वस्थ हो गया हूं पर बिना कबीर को सोचे नींद नहीं आती। तो इन दिनों तो कारखाने में कच्चा माल बन रहा है। जब वह इस योग्य होगा, तभी जनता के सामने आएगा...!

अभी क्या अनुमान है, कब तक यह सामने आ पाएगा?

देखिए, समय तो कम में हो गया होता, लेकिन कहा न मैंने आपसे कि अब इसी शाम अगर...! मेरे सरोकार तो इस समय चलती हुई आज की परिस्थितियों के साथ हैं। मैं एक संपृक्त लेखक की भूमिका में हूं। मेरी मनोकामना है कि कभी भी साहित्यकार को सामाजिक सरोकार से भागना नहीं चाहिए अन्यथा उसे आने वाला समाज कभी पूछता भी नहीं। भले ही उसमें कष्ट बहुत होता है लेकिन कष्ट अगर न हो तो बड़ी कृतियों का जन्म नहीं होता। □

Indian Cinema : A Visual Voyage



This book is a pictorial documentation of milestones that Indian cinema has traversed during the last 100 years. It takes the reader on a voyage that brings home the expanse and variety of Indian cinema right from the pre-Lumiere magic lantern age till the nineties.

The book contains some rare and hitherto unpublished photographs beautifully and sequentially arranged to put the history on Indian cinema in right perspective.

Hardbound with Jacket

Size A 4
Pages 290
Colour Stills 58
Black & White Photos 570
Price Rs.1200/-

Brought out by:
Publications Division & NFDC

The richness and variety of films in Indian languages is also well depicted in this book. It is a must for students of cinema, film-makers, journalists, researchers and libraries.

For Copies Write to:

**The Business Manager
Publications Division
Patiala House
New Delhi-110 001.**

बिल में उलझा दिल

मनोहर पुरी

एकाएक हमें ज्ञात हुआ कि हमारे पहलू में भी एक अदर दिल है, आज तक हम समझते थे कि वह खून साफ करने की वर्षों पुरानी 'मिल' है। अब तक हम अपने शरीर विज्ञान से पूरी तरह उदासीन थे। बीमारी और बदसूरती से भरी दुनिया में सेहतमंद और खासे हसीन थे। नहीं जानते थे कि शरीर है तो दिल भी होना ही था, आंख थी तो कभी न कभी रोना ही था। वर्षों से दिल गंदे खून की सफाई करता रहा, और हमारी हर रोग से रक्षा करता रहा- जैसे धर्म राजनीति की करता है और कर्म पाप करने से डरता है। जैसे आज राजनीति ने धर्म को है नकारा और कर्म ने समूचे पाप को है डकारा, वैसे ही हमने अपने दिल को फटकारा, सफाई करने वाला अदना-सा सेवक था, चुप रह गया बेचारा। अपने समाज में भी सफाई करने वाले की कब किसी ने परवाह की है जो हम दिल की करते, निरंतर उच्च वर्ग का बोलबाला देखा था सो हम बुद्धि का ही दम रहे भरते। थोड़ा बहुत बाहुबल पर इतराते थे, चरणों की ओर शायद ही कभी नजर घुमाते थे। अपने काम के कारण दिल बुद्धि से मात खा गया, हल्का-हल्का दर्द सहता रहा परंतु साफ कहने में लजा गया। बुद्धि के बिना भी न जाने कितने ही लोग बुद्धिजीवी कहलाते हैं और दिल की धड़कन के साफ सुनाई देने पर भी बेदिल के नाम से जाने जाते हैं। अपना अपना भाग्य है इस पर क्या मचाना शोर। वैसे भी दिल और दिमाग पर कब चला है, किसी का जोर। अपना भी दिल दिमाग के चक्कर में आ गया और तेज दर्द होने की बात डाक्टर से साफ छिपा गया।

जैसे गंगा गंगोत्री से ही प्रदूषित होने लगती है, हमारा खून भी बचपन से ही प्रदूषित होने लगा था। शुरु है कि उस समय डिब्बा बंद दूध तक ही प्रदूषण समाया था, सिंथैटिक दूध का फार्मूला हमारे दुधियों के हाथ में अभी नहीं आया था। गंगा की सफाई के नाम पर करोड़ों रुपया पानी हो गया, हम अच्छे रहे हमें मुफ्त में दिल-सा रक्तशोधक उपलब्ध हो गया। जैसे थेंट में मिली नहीं पड़ता कोई किताब, हमने भी दिल के काम काज का नहीं रखा कोई हिसाब। अपनी सेवावृत्ति में संलग्न दिल को इतनी फुर्सत ही नहीं मिली कि वह हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता अथवा हमें रिझाने को चमचागिरि की तर्ज पर किसी सुंदरी पर ही मर मिटता। कोल्हू के बैल की तरह एक ही जगह धक धक रहा करता। इस धकाधकी में उसे समय ही नहीं मिला कि वह अपने आप को किसी दूसरे के पहलू में 'फिट' करता। अर्थात् अपने अहम धंधों को छोड़कर न तो वह किसी मृगनयनी के नयन में अटका और न ही किसी सुकेशी की अलकों में भटका।

दिल के लग जाने, टूट जाने, जुड़ जाने, रूठ जाने, फेंकने अथवा लपकाने के किस्से हम बचपन से सुनते आए थे। हमारा कभी दिल लगेगा, यह गुनते आए थे। दिल ने लोगों को न जाने किस किस बात के लिए मजबूर किया, दिल ने उन्हें प्रेम की दीन और दुनिया में मशहूर किया। दिल ने प्रेमी, कलाकार और कवि हैं बनाए, दिल ने मंदिर और ताजमहल तक हैं सजाए। जब कभी दिल ऐसी कोई भूमिका निभा रहा होता होगा, तक खून साफ करने के कर्तव्य का क्या होता होगा? शायद दिल भी दोहरी भूमिका वाला किरदार है, किसी फिल्मी हीरो से भी बड़ा कलाकार है। जब कभी दिल ऐसी ही भूमिका के लिए आउटडोर शूटिंग की ओर जाता होगा दौड़ा, शायद उसे ही लोग कहते होंगे पड़ा है दिल का दौरा।

हमारे दिल के सपने भी बड़े हसीन थे, पर हम उसकी तरफ से पूरी तरह उदासीन थे। जिस दिल को हमने कभी भी नहीं झटका, उसकी धमनियों में भी था कहीं न कहीं कुछ अटका। वह तीव्र वेदना से लाचार हुआ, तब हमें लगा कि अपना भी दिल है बीमार हुआ। लोग दिल लगा कर तड़पते हैं, यहां बिना लगाए ही तड़पड़ाए। दर्द-दिल से क्या कोई घबराता होगा, जितना हम दिल के दर्द से घबराए। किसी प्रेम गली की बजाय हमें नर्सिंग होम का रास्ता दिखा दिया गया, जो नकाब तेंनसिंग ने एवरेस्ट पर पहना था उससे हमारा सुंदर-सा मुखड़ा सजा दिया गया।

तीन दिन और तीन रात तक गहन कष्ट ने नरम-नरम गद्दे पर हमारी एक-एक धड़कन संवारी गई, नर्सों तथा डाक्टरों द्वारा हमारी बेचारी की हालत निहारी गई। जितने फोटो हमारे दिल के उतारे गए, उतने किसी ने हमारे सेहरे के भी नहीं खींचे थे, जब हम साक्षात कार्टून बने एक क्वारी घोड़ी की पीठ पर बैठकर एंटे थे। आज हमारी 'वो' सात फेरों के कारण बड़ी मजबूर थी। शक और शुबह की दुनिया में 'उनकी' प्रतिया बहुत मशहूर थी। नर्सिंग होम के दरवाजे के बाहर आने वाली हर डाक्टर और नर्स पर नजर रखना उनकी लाचारी थी, सुन चुकी थी कि वहां पर कुछ लोगों को मानव अंग चुराने की बीमारी थी। वह अपने दिल के हाथों मजबूर थी पर हमारे दिल की चौकसी के लिए चौकस भरपूर थी। नर्सिंग होम के डाक्टरों में महिलाओं की संख्या बहुत भारी थी, इसलिए अतिरिक्त सावधान रहना उनकी लाचारी थी। महिलाएं दिल के मामले में कुछ अधिक संवेदनशील हैं, यह बात वह औरत होने के नाते जानती थी, स्त्रियां ही दिल चुराती हैं, इसे भी मानती थीं। चौकसी इसलिए भी जरूरी थी क्योंकि अब तो यह सिद्ध हो चुका था कि हमारे

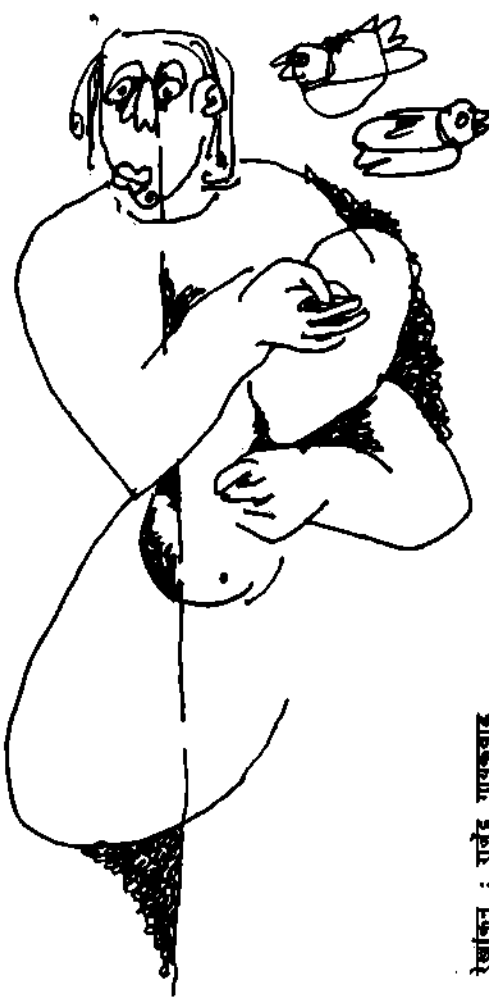
पास भी एक अदद दिल है। दो-चार होते तो शायद कुछ बात पट जाती, एक-आध की हस्ती दूसरे-तीसरे के साथ बट जाती।

गुर्दे सरीखे कुछ अंग विकने की बात वह मानती थीं, ऐसा भी कोई व्यापार पनप रहा है जानती थीं। कहा करती थीं- अंग या तो कोई बहुत ही मजबूरी में निकलवाता है अथवा कोई डाक्टर किसी दलाल के हाथों विकवाता है। इस सत्य को जानकर भी सभ्य समाज कब अपनी सभ्यता पर शर्माता है। दूसरे का दिल लेने वाला तो वैसे भी अपने आप पर इतराता है। अब यदि गुर्दे की तर्ज पर कोई हमारा दिल चुराकर ले जाता, तो क्या होता, यही सोच सोचकर उनका दिल था जार-जार रोता। दिल के सहारे ही तो जिंदगी का गुजारा था, दिल के बिना उनके दिल का कहां कोई सहारा था!

हमारे दिल के उतारे गए फोटो साफ कर रहे थे ऐलान, कहीं न कहीं कोई भयानक व्यवधान है श्रीमान। शून्यकाल की तरह हर तरफ शोर-शराबा है, आवाज सरीखा पता ही नहीं लगता कि रक्त किधर से आकर किधर जाता है। सभापति सदन के नियमों से बंधे हैं, नियम हैं कि आपस में एक-दूसरे पर ही तने हैं। ऐसे ही डाक्टर भी आपस में टकराते थे, कोई बाइपास तो कोई एंज्योप्लास्ट सुझाते थे। गड़बड़ कहां पर है। यह बिना दिल का डाक्टर कब जानता है, ज्यादातर डाक्टरों के सीनों में दिल की जगह सोने का सिक्का जो विराजता है। डाक्टर भी आजकल माल-दर-माल टटोलता है, मरीज के दिल की बजाय उसकी जेब का वजन तोलता है।

इन तीन दिनों में नर्सों ने हमारी बहुत की थी सेवा, इसी सेवा का ही तो उन्हें मिलता है मेवा। चाहने पर भी हमें 'बाथरूम' तक जाने नहीं दिया, गरम पानी से भी नहाने नहीं दिया। सुबह बीत जाने के बाद एक नर्स आती थी, हमारे नाजुक से बदन पर एक गीला खुरदरा तैलिया फिराती थी। हल्की सी कराह पर डाक्टर दौड़ा चला आता था, हमारे खून का कुछ न कुछ अंश साथ ले जाता था और नित नया कोई न कोई टेस्ट करवाता था। फटाफट क्रिकेट के इस दौर में भी वह पांच दिवसीय मेच खिलवाता था। दस दिन तक हमारे ही हित में हमें नर्सिंग होम में जबरन रोक लिया गया, पांच जमीन पर रखने तक पर टोक दिया गया।

इस नर्सिंग होम से छुटकारे के लिए एक क्लीयरेंस चिट की जरूरत थी, उसके लिए बैंक बैलेंस को समाप्त करना ही एक मात्र सूरत थी। जब सूरत का हमने जुगाड़ बैठाया, तो प्रसन्न मन से डाक्टर ने हमें समझाया-देखो, अब संभलकर गाड़ी चलाना- यहां-वहां बेकार ही मत



टकराना। मैं जब थोड़ा-सा अचकचाया तो उसने अपनी सरल भाषा में बतलाया। शायद वह कोई भूतपूर्व ट्रक ड्राइवर था, सो बोला, 'तुम्हारे दिल के राजमार्ग पर ट्रैफिक एकदम जाम है, इसके लिए बाइपास का निर्माण ही जीवन का सबसे जरूरी काम है।' इसमें तनिक भी देर होने से होने वाली हानि का ब्यौरा समझाया, दो-तीन लाख में बाइपास का निर्माण करने वाली फर्मों का नाम तक सुझाया। एक फर्म से जल्दी ही हमने पास बनवाया। जल्दी ही दिल के राजमार्ग पर तेजी से ट्रैफिक दौड़ेगा- यह कहकर मन को समझाया। कुछ दिन आराम फरमाकर यात्रा पर निकलने की तैयारी थी, पर हमें ज्ञात नहीं था कि डाक्टरों के पश्चात अब आयकर के चंगुल में फंसने की बारी थी।

हम ठीक हो ही पाए थे कि आयकर विभाग का एक नोटिस आया, आजकल के युग में दो-तीन लाख रुपए के सफेद धन का ब्यौरा था मंगवाया। हमने तो काले दिल के इलाज के लिए काला धन दिया था, हिसाब कहां से बनवाते, बाइपास बनवाने के लिए धन कहां से आया था, आयकर वालों को कैसे बतलाते। नर्सिंग होम के चक्कर तो बीबी ने लगाए थे, यहां अब हमारी बारी थी। चपरासी तक

को चाय-पानी पिलाना हमारी लाचारी थी। आयकर अधिकारी आठवीं मंजिल पर विराजता था, हमारे सांस लेने तक पर फुंकारता था। विद्युत के अभाव में लिफ्ट विधवा-सी लाचार पड़ी रहती थी, सीढ़ियां हमें साक्षात नरक का द्वार नजर आती थीं।

एक दिन हम होकर बेजार, सीढ़ियां चढ़-उतर रहे थे बार-बार, एक जोरदार चक्कर आया जिसने हमें आयकर अधिकारी से तत्काल छुटकारा दिलवाया और हमें एक बार फिर नर्सिंग होम में पहुंचाया। फिर से हमारे दिल का ट्रैफिक जाम है, परंतु आयकर विभाग की सीढ़ियों की अपेक्षा यहां बहुत आराम है। फिर से नर्सों हमें गुदगुदा रही हैं, आयकर विभाग के घुटन भरे कमरे की याद से ही आंखें पथरा रही हैं। अपने बाल-बच्चों का हमें बहुत लिहाज है, जिन्हें हमारे ठीक होने की पूरी आस है। आयकर विभाग भी जीभ लपलपा रहा है, दोगुनी मिठाई का स्वाद लुभा रहा है।

सब हमें फुटबाल की तरह से लतियाते हैं। जिधर जाएं मुसीबत को खड़ा पाते हैं। सोचता हूं कि काश ईसान के सीने में कोई दिल ही न होता, या डाक्टरों का इतना भारी बिल न होता अथवा आयकर अधिकारी ही इतना संगदिल न होता। □

रेखांकन : रावेद शायकबाद

गीत की वापसी की कशमकश

हीरालाल नागर

पिछले दिनों अनियतकालीन पत्रिका नए पुराने के तीन अंक गीत को समर्पित किए गए। इन अंकों में पत्रिका के संपादक दिनेश सिंह ने गीत के विविध पक्षों को उजागर करने का प्रयास किया है। गीत अंक-1 (नवंबर 1997), गीत अंक-2 (अप्रैल 1998) और गीत अंक-3 (दिसंबर 1998) में हालांकि सामग्री का संयोजन एक ही पैटर्न में किया गया है पर इसके आलेख-प्रलेख बहस की नई जमीन तैयार करने में समर्थ जरूर लगते हैं। अंक-1 में 'बहस के लिए' के अंतर्गत जगदीश गुप्त का लघु लेख है- 'कविता को किसी विधा तक सीमित करना अन्याय है।' इसमें जगदीश गुप्त गीत की ऊपरी सतह पर लाइन खींचते हैं। दरअसल मुश्किल यही है कि जब बहस का मुद्दा आता है- गंभीर लेखक उसका सामना करने से कतराते हैं, परंतु अब्दुल बिस्मिल्लाह और रामदरश मिश्र गीत और कविता के पक्ष को संतुलित दृष्टि से देखते हैं। रामदरश मिश्र लिखते हैं- 'नई कविता प्रभावशाली सिद्ध हुई-क्योंकि इसमें कविता की वेगवती अंतर्धारा थी, ऊपर का फेन नहीं था। दूसरी ओर गीत काव्य अधिक सतही पिछेपिछे भावों और शब्दों को चबाने वाला था।'

'परंपरा और प्रयोग : सामंजस्य खंड में कुछ गीतकारों के आलेख हैं जिनमें वे गीत के पक्ष को सशक्तता के साथ रखने की कोशिश करते हैं। श्रीपाल सिंह क्षेम, निर्मला जोशी और सुरेश गौतम के आलेख गीत के एक पक्ष को ही रेखांकित करते हैं- जब कि गीत-आलोचकों को गीत के दूसरे पहलू पर भी विचार करना चाहिए। आंख मूंदकर 'गीत' के पक्ष में बयान देने से बात नहीं बनती। 'आधुनिकता बोध और जातीय अस्मिता' खंड में ओम प्रभाकर का आलेख 'हिंदी गीत यात्रा: दिशा और दिशांतर' पठनीय है पर शिव बहादुर सिंह भदौरिया ने अपने आलेख 'विवाद से बाहर : गीत-नवगीत' में जिस तरह की एकांगी व्याख्या की है- उससे सहमत होना वाकई में कठिन है। अनूप अशेष के नवगीत पर विचार संतुलित हैं। जब कि वेदप्रकाश अमिताभ 'गीत की प्रासंगिकता-नवगीत के संदर्भ में' में गहराई से विचार करते हैं। डा. शंभूनाथ सिंह के एक आलेख का हवाला देकर वेदप्रकाश अमिताभ, उनके इस वक्तव्य का निषेध करते हैं कि 'नई कविता भारतीय परंपरा और आम भारतीय जीवन से कटी हुई है और नवगीत में भारतीय जातीय अस्मिता, सांस्कृतिक परंपरा और आम आदमी के जीवन से संपृक्त का भाव विद्यमान है।' वेदप्रकाश

अमिताभ स्पष्ट कहते हैं कि डा. सिंह की यह स्थापना विचारोत्तेजक होते हुए भी स्वीकार्य नहीं है। यह एक अतिवादी मूल्यांकन है।

गीत के प्रति अतिवादी मूल्यांकन का यह दौर अभी खत्म नहीं हुआ है। गीत-रचनाकारों को इस ओर काफी धैर्य से विचार करना होगा। वेद प्रकाश अमिताभ का यह कथन विचारणीय है- 'जो रचना अपने समय का साक्ष्य बनने की शक्ति नहीं रखती, जिसमें जीवन की बुनियादी सच्चाइयाँ केंद्रस्थ नहीं होतीं, जिसका विजन स्पष्ट और जनधर्मी नहीं होता, वह अपनी कलात्मकता के बावजूद अप्रासंगिक रह जाती है।'

'नवगीत का सौंदर्य-बोध' शीर्षक से राजेंद्र गौतम की प्राध्यापकीय आलोचना का धरातल व्यापक होते भी वह 'नवगीत' की वकालत में लिखा लगता है। एक जगह राजेंद्र गौतम यह लिखते हैं कि 'नवगीत की मूल चेतना के स्रोत निराला हैं। उनके पश्चात गत तीन दशकों में नवगीत की परिष्कृत सौंदर्य चेतना ने हिंदी कविता को नए आयाम दिए हैं।' नवगीत की मूलचेतना के स्रोत निराला हैं- यह सभी स्वीकार करते हैं पर निराला के बाद के नवगीत की 'परिष्कृत चेतना' के बारे में कुछ नहीं बताते। जब कि 'परिष्कृत चेतना' का चक्कर ही नवगीत के लिए खतरनाक साबित हुआ है। राजेंद्र गौतम का पूरा आलेख नवगीत के आत्ममुग्ध सौंदर्यशास्त्र से पीड़ित है।

गीतकार शिवबहादुर सिंह भदौरिया से साक्षात्कार और हिंदी गीत में उनके योगदान को लेकर ओमप्रकाश अवस्थी, नीलम श्रीवास्तव व रामप्रकाश सिंह के आलेख इस अंक की उपलब्धि हैं। गीत-काव्य के सृजनधर्मी रचनाकारों के सम्मान में उसके रचनात्मक अवदान को रेखांकित किया जाना बेहतर है।

गीत अंक-1 के 'स्मृति शेष' खंड में मानबहादुर सिंह, वसु मालवीय और धर्मवीर भारती को याद किया गया है। वसु मालवीय संभावनाशील रचनाकार थे। युवावस्था में उनका विदा हो जाना दुःख है। और जिस तरह मानबहादुर सिंह की नृशंस हत्या की गई वह पूरे हिंदी-समाज के लिए भय और शर्म से भर देने वाली है। धर्मवीर भारती के साथ एक युग का अंत हो गया।

पत्रिका में 'नए पुराने' गीतकारों की रचनाएं काफी हैं पर इनमें कुछेक गीत ही प्रभावित करते हैं। कैलाश गौतम और वसु मालवीय के गीत- गीत और नवगीत के सौंदर्य-बोध की सहजता को अभिव्यक्त करते हैं। आंचलिक गीत और लोकगीत के विधान और उसकी रचना

वस्तु पर विचार तो किया गया है पर आधे-अधूरे ढंग से।

गीत अंक-2 के अब बोध खंड, परंपरा, प्रयोग और नवता खंड महत्वपूर्ण हैं। इस अंक का संपादकीय भी गौर करने योग्य है क्योंकि इसमें गीत और नवगीत के अंतर्विरोध प्रकट हुए हैं। संपादक दिनेश सिंह लिखते हैं- 'नवगीत की जहां बात है, यहां घालमेल सबसे ज्यादा है, छंदमुक्त कविता से भी ज्यादा क्योंकि गीत जगत में नवगीत एक फैशन बनता जा रहा है। इस प्रकार इस घालमेल से उत्पन्न संकट छंदमुक्त कविता के संकट से बड़ा है क्योंकि यहां सही रचनाधर्मिता, संतुलित और निरपेक्ष वैचारिकता और उसके समीक्षा कर्म के मुहाने पर कुछ कथित पुरोधा-महंत पलथी मारकर बैठे हैं।'

'गीत-मत' के अंतर्गत 'गीत : एक भाव पक्ष', 'गीत, गीत है' और 'पत्थर नहीं गाते' में डा. रामप्रसाद मिश्र, 'विनय भदौरिया और रामबाबू रस्तोगी के विचार पठनीय हैं। 'काव्य गीतेन हन्यते : एक दृष्टिकोण' और 'गीत क्यों और

क्यों नहीं' में श्रीपाल सिंह 'क्षेम', 'गीत : नया विन्यास ही नएपन की कसौटी है' में सुरेंद्र काले, 'नवगीत : समीक्षा-व्यूह' पर एक टिप्पणी में गुलाब सिंह तथा 'नए परिदृश्य और गीत' में राम तेलंग के आलेख गीत की विविधता को अपने ढंग से व्याख्यायित तो करते हैं पर दृष्टि साफ नहीं है। परंपरा, प्रयोग और नवता खंड में हिंदी के गीतकारों के रचना-पक्ष की शिव बहादुर सिंह भदौरिया ने अपने ढंग से मूल्यांकन ठीक किया लगता है। यश मालवीय का आलेख 'आजादी के बाद का हिंदी गीत' में ताजगी है। नवगीत पर सत्येंद्र शर्मा, अमरनाथ श्रीवास्तव और विश्वनाथ प्रसाद के लेख ठीक हैं। 'हिंदी कविता का संवादी-स्वर' में माहेश्वर तिवारी की समीक्षात्मक दृष्टि वस्तुपरक है।

गीत अंक-3 में सामग्री की प्रस्तुति का तरीका पिछले अंकों जैसा है।

गीत पर आलोचनात्मक टिप्पणियों में फिर वही नाम आते हैं- जिन्हें पिछले अंकों में पढ़ लिया गया है। 'गीत मत' में इस बार राजेंद्र गौतम और रवींद्र भ्रमर की टिप्पणियां हैं। परंपरा, प्रयोग और नवता में कुछ नए नाम जुड़ गए हैं और एक होड़-सी लगी है कि कौन गीतकार कितने अच्छे ढंग से गीत के पक्ष में अपना बयान जारी करता है। 'प्रश्नों के आइने में स्वातंत्र्योत्तर गीत साहित्य' में शिव बहादुर सिंह का विवेचन इस अंक

की उपलब्धि है। ठाकुर प्रसाद सिंह के प्रसिद्ध गीत संग्रह *वंशी और मादल* पर गुलाब सिंह की 'पुनर्विचार की अपेक्षा' आलेख गीत-विधा की स्थापनाओं की ओर विचार करने की जमीन देता है। नवगीत और गीत पर अनेक महत्वपूर्ण कार्य है, जिन्हें पुराने गीत संग्रहों के बहाने नए सिरे से रेखांकित किया जा सकता है। इसी खंड में गुलाब सिंह और यश मालवीय के गीत पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं।

इस अंक के विशिष्ट रचनाकार रमानाथ अवस्थी हैं। उनसे बातचीत की महत्वपूर्ण कड़ी को गीतकार मधुर शास्त्री प्रस्तुत करते हैं। उपेंद्र द्वारा रमानाथ अवस्थी के कृतित्व का मूल्यांकन 'रमानाथ अवस्थी की गीत सृष्टि: निजत्व की व्यापकता के आयाम' गीत की नई परतें खोलता है।

सुरेश गौतम का लेख भी अवस्थी के काव्य मूल्यांकन को गहरी दृष्टि से देखता है। समीक्षा खंड में वीरेंद्र सिंह की धार पर हम पर समीक्षात्मक टिप्पणी बड़ी विचारोत्तेजक है।

छठे और सातवें दशक में जिस गीत-विधा को हम पीछे छोड़ आए थे- उस पर

नए सिरे से बात की जाए, इसका सभी स्वागत करेंगे। लेकिन पिछले पचास सालों में गीत पर साहसिक और सम्यक दृष्टि की आलोचना का अभाव खटकता है। गीत-रचना से मेरे खयाल से किसी को कोई गुरेज नहीं है लेकिन यदि वह समय-निरपेक्ष है, उसमें आदमी के वक्त की धड़कन नहीं है तो वह ठहर कैसे पाएगा! हिंदी के प्रसिद्ध कवि की पंक्ति में यदि कुछ नाम लें तो आप पाएंगे कि उनके पास गीत परंपरा का समृद्ध आलोक है। निराला, नागार्जुन, शमशेर बहादुर सिंह, कंदारनाथ सिंह, त्रिलोचन और कंदारनाथ अग्रवाल- हिंदी कविता के स्तंभ हैं लेकिन उनकी गीत-रचनाएं देखेंगे तो अंतर स्पष्ट हो जाएगा कि 'गीत और नवगीत' की रचनात्मक दृष्टि किस वजह से स्थूलित हो रही है। बच्चन, भारती, रमानाथ अवस्थी, नीरज, रामावतार त्यागी, गोपाल सिंह नेपाली, बलवीर सिंह रंग, नरेंद्र शर्मा, वीरेंद्र मिश्र, ठाकुर प्रसाद सिंह, उमाकांत मालवीय और शंभूनाथ सिंह के योगदान से कौन इंकार करता है? पर यह भी देखा जाना चाहिए कि गीत के अस्वीकार के पीछे कारण क्या हैं? इसकी तलाश, इसकी खोज स्वयं हिंदी गीतकारों को करनी है। शायद इस दिशा की ओर नए पुराने ने सोचना शुरू किया है। इस दृष्टि से इन अंकों की प्रासंगिकता बनी रहती है। संभव है, नए पुराने के संपादक दिनेश सिंह गीत के आत्मालोचन के व्यापक मानदंडों को भी तलाश कर सकेंगे। □

आना दुनिया देखने कबीर का : अपनी छह सौवीं शताब्दी पर

काशी का जुलाहा : महावीर अग्रवाल; श्री प्रकाशन, दुर्ग (मध्य प्रदेश)

मूल्य : 70 रुपये

‘रचना की कसौटी शायद यों ही तय होती है। पहली यह कि उसे पढ़ने में मन लगे और दूसरी यह कि उसे किसी तरह पढ़ा जा सके। अक्सर यह दूसरी कसौटी ही तय करती है कि कोई रचना दीर्घजीवी होगी या नहीं।’ (गिरिधर राठी, ‘ऊहापोह’) लेकिन कुछ रचनाएं ऐसी भी होती हैं जो खुद में तमाम अर्थवत्ता और मर्म को संजोए होने के बावजूद हमें जगह-जगह छोड़ती हैं, अपनी पकड़ से निकालती हैं कि हम बार-बार सोचें। संदर्भ से कटकर भी उसके अर्थ को पकड़ते हुए उसकी सूक्ष्मता तह तक पहुंच पाएं। काशी का जुलाहा अपने 39 पृष्ठों पर बिखरे नौ दृश्यों के मध्य से गुजरते हुए हमें कुछ ऐसा ही अहसास कराता है। इसका मतलब यह कतई नहीं कि नाटक कमजोर है। दरअसल अर्थ यह लेना चाहिए कि इसमें निहित सामाजिक व्यंग्य हमें ठहरा-ठहरा कर कटाक्षों के वाणों से बिंधे चेहरों की पड़ताल कराते हैं। तमाम मुखौटों के बावजूद हम असली गुनहगार को, उसकी विरूपताओं को आसानी से पहचान लेते हैं।

आज की तारीख में कबीर पर लिखना कोई नया विषय नहीं रह गया है। इस लिहाज से विषय क्षेत्र की सीमा किसी से छिपी नहीं है। इस सीमा के बावजूद लेखक ने यह विषय क्यों उठाया, इस पर शोध करने की बजाय हम कबीर पर लिखे गए अन्य नाटकों को भी देखें। काशी का जुलाहा नाम से ही गोविंद बल्लभ पंत ने भी एक छात्रोपयोगी नाटक लिखा था। नंद मोहन कृत कहे कबीर सुनो भाई साधो और मणि मधुकर कृत इकतारे की आंख की भी विषयवस्तु यही है। भीष्म साहनी

रचित कालजयी नाटक कबीर खड़ा बजार में अपने कथ्य और शिल्प की दृष्टि से इसी विषय पर एक अभिनव प्रयोग है। गोविंद बल्लभ पंत की रचना को अगर छोड़ दिया जाए तो अन्य तीनों नाटककारों ने कबीर के रूढ़ि भंजक और मानवतावादी दृष्टिकोण को केंद्र में लेकर रचना की है उसी केंद्र की परिधि में महावीर अग्रवाल भी रचना करते दिखाई देते हैं। नाम, विषय और दृष्टिकोण कुछ भी नया न होने के बावजूद इस विषय को चुनना एक चुनौती थी जिसे लेखक ने खुले दिल से स्वीकार किया है। वैसे भी कबीर एक ऐसा व्यक्तित्व है, जिस पर जितना लिखा जाए, कम है। आखिर क्या कहा जाए कबीर को-कवि? आलोचक? समाज सुधारक? मूर्तिभंजक या फिर परम भक्त ?

आज जब खाने और दिखाने के दांत की तर्ज पर चारों ओर कबीर की प्रसंगिकता की दुहाई दी जा रही है, इस नाटक के माध्यम से ‘कबीर के एक दिन इस दुनिया को देखने आने की कल्पना’ को रूपायित किया गया है। इस दुनिया को देखने के क्रम में कबीर मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे विद्वत मंडली, कबीर पंथी मठों आदि तक में घूमते हैं और पाते हैं कि जाति-पात, धर्म-संप्रदाय, ऊंच-नीच के भेदभाव उनके समय से भी ज्यादा उफान पर हैं। सच कहने की एवज में कबीर हर जगह खुद को अकेला, असहाय, उपेक्षित और प्रताड़ित पाते हैं। अंततः वह यह कहते नजर आते हैं पूरी भारत भूमि देख ली। बड़े-बड़े कलमकारों ने राष्ट्र भक्त नेताओं ने और पंथ के ठेकेदारों ने कबीर को लेकर बड़े-बड़े दावे किए..... जानने

आया था, अब लौट जाऊंगा।’ और पूरे नाटक का निष्कर्ष कबीर की एक पंक्ति में छिपा नजर आता है- ‘धूल की जो परत समाज पर चढ़ी है उसे झाड़ सकना अब एक कबीर के बूते की बात नहीं।’

नाटककार ने अपने इस नाटक में यथार्थ और फंतासी के मिश्रण से इतिहास और वर्तमान को एक बनाते हुए नाटक लेखन की एक नई शैली विकसित करनी चाही है। दूसरे दृश्य में दिखाया गया लोई कबीर और सिकंदर लोदी से संबंधित चित्र जहां हमें 550 वर्ष पुराने अतीत के मोड़ पर खड़ा करती है वहीं नाटक का अधिकांश वर्तमान संदर्भों से सीधा संवाद करता है। नाटक की दोनों रीतियों- नाट्यधर्मी और लोकधर्मी (या यथार्थवादी रीति), का प्रयोग प्रस्तुति नाटक में मिलता है। नट-नटी के रूप में सूत्रधार का समायोजन नाट्य साहित्य की प्राचीन परंपराओं के निर्वाहन का द्योतक है। अतीताश्रित नाटकों में नाटककार अतीत का उपयोग संदर्भित वक्त और उसके हालात को समझने में, ज्ञात और अज्ञात को पुनर्व्याख्यायित करने में करते हैं पर यहां नाटककार कथ्य के अतीताश्रित होने के बावजूद किसी भी इतिवृत्त की आवृत्ति नहीं होने देता। यहां अतीत महज आलंबन या उत्प्रेरक मात्र है और कथ्य नाटककार की अपनी संवेदना से परिपूरित। अंधा युग जिस तरह वर्तमान समाज के अंधेपन को चित्रित करता है, उसी तरह काशी का जुलाहा तत्कालीन परिस्थितियों में कबीर के हृदय की बात को ध्वनित करता है, जिसकी हम बार-बार उपेक्षा करते हैं। इस नाटक को पढ़ते हुए हरिवंश राय बच्चन की ‘बुद्ध और नाचघर’ शीर्षक कविता बार-बार याद हो आती है- तुम थे मूर्ति के विरुद्ध / उन्होंने बना डाली तुम्हारी ही मूर्ति। तुमने पूजा का किया या विरोध / उन्होंने तुम्हें ही दिया पूज।

नाटक की भाषा अति सरल, सहज तथा गीत सुंदर, व्यापक और दृश्यानुरूप है। इसका मंचन इतना आसान होगा कि नुकड़ों पर भी खेला जा सके। इसकी प्रस्तुति के लिए विशेष तामशाम की जरूरत नहीं है। कबीर के क्रांतिकारी और परंपरा विरोधी व्यक्तित्व को चित्रित करने के बावजूद नाटककार शीर्षक देते समय कुछ संकीर्ण-सा हो गया है, कारण कि मानवीय प्रेम की चादर बुनने वाला यह जुलाहा काशी का होकर भी सिर्फ काशी का नहीं है, संपूर्ण जगत का है।

— कविता

नारी के उत्पीड़न की अंतर्कथा

शीशे का घर : एम. के महताब; प्रकाशक अनमोल साहित्य प्रकाशन; विवेक विहार, नई दिल्ली-95 पृष्ठ संख्या 96; मूल्य : 100 रुपये

हिंदी में जब दूसरी भाषाओं का साहित्य आता है तो वह हिंदी का अपना हो जाता है और उससे हिंदी साहित्य समृद्ध होता है। दूसरी भाषाओं के शब्द हिंदी में पूरी तरह रच-बस जाते हैं और अनेक भारतीय एवं विदेशी भाषाओं के शब्द हिंदी में पूरी तरह समाहित हो जाते हैं।

पंजाबी व उर्दू के कथाकार एम. के महताब की कहानियों का संग्रह *शीशे का घर* पहली बार हिंदी में प्रकाशित हुआ है। महताब पिछले चालीस वर्ष से पंजाबी और उर्दू कथा साहित्य में योगदान कर रहे हैं। प्रस्तुत कहानी संग्रह में उनकी पंद्रह कहानियां संकलित हैं। ये कहानियां मूलतः हिंदी में लिखी गई हैं या पंजाबी व उर्दू से अनूदित हैं, इसका उल्लेख कहीं नहीं है। लेकिन ऐसा लगता है कि ये कहानियां मूलतः हिंदी में ही लिखी गई हैं।

महताब ने 'अपनी बात' में लिखा है- 'क्षण की बात क्षण में ही समाप्त हो जानी चाहिए। उपन्यास नहीं बन जाना चाहिए।' यह बात उनकी कहानियों में साफ दिखाई देती है और अधिकांश कहानियां एक झटके में खत्म हो जाती हैं। इन कहानियों में सपाटबयानी अधिक है जो अपनी रौ में चलते हुए अचानक खत्म हो जाती है। इनमें कहीं कोई चमत्कार नहीं है बल्कि आम बोलचाल की भाषा में सीधे-सपाट ढंग से कहानी चलती है और जब खत्म होती है तो लगता है कि यह कोई घटना नहीं बल्कि कहानी है। बिना कहे ही कहानियां बहुत कुछ महताब की इन कहानियों में नारी की वेदना, पीड़ा, उत्पीड़न और शोषण की तस्वीरें अधिक हैं। नारी की कथा को चित्रित करने वाली इन कहानियों में नारी कहीं इतनी अधिक बोलू नहीं है कि वह अपने उत्पीड़न और शोषण के खिलाफ उठ खड़ी हो-यही इस संग्रह के अधिकांश नारी पात्रों की कमजोरी है क्योंकि वे कुछ फैसला स्वयं ले पाने में सक्षम नहीं हैं।

'मैं गुनहगार सही' की अर्चना जब उत्पीड़न

होने पर उठ खड़ी होती है और वह जब फैसला लेती है तो उसे तरह-तरह से आरोपित किया जाता है। जबकि 'बेइज्जत' की वह लड़की अपमानित होकर भी कुछ नहीं कर पाती क्योंकि उसे अपने पांवों पर खड़े होना है। अपनी पुत्री के वैवाहिक जीवन से खिलवाड़ करने वाले मां-बाप का चेहरा 'सब कुछ' में सामने आता है, जो पहलवान जी की मदद से मिन्नी की ससुराल वालों से सब कुछ वापस पा लेते हैं, पर मिन्नी की कथा नहीं जान पाते। 'आस का पंछी' में प्रेम-विवाह के बाद पुत्र के कारण पति-पत्नी में बढ़ती दूरियां हैं तो 'कांपते हाथ' में अपनी औलाद के लिए फालतू हो गया वृद्ध है। अस्तित्वहीन, उस लेडी डाक्टर के जीवन की त्रासदी का चित्रण करती है जिसे कभी नंदा ने, तो कभी टंडन ने और कभी सबरवाल ने निचोड़ा है फिर भी वह किसी न किसी पुरुष का तमगा लगाने के लिए बेचैन रहती है। उसका अपना नाम तो जैसे कहीं खो गया है।

'शीशे के घर' की सुष्मा अपनी ही बेटी को किसी दायरे में बांध पाने में असमर्थ है क्योंकि वह ऐसा प्रश्न सामने रख देती है जिसको हल कर पाना सुष्मा के बूते की बात नहीं। विधवा मां ऐसे घरतल पर खड़ी है जहां उसकी अपनी बेटी गलत दिशा में बढ़ रही है, उसके रोकने के प्रयास के सामने बेटी ऐसा सवालिया निशान लगा जाती है, जो उसके जीवन की सबसे बड़ी पराजय है। बेटी ही मां को कठघरे में खड़ा कर देती है। यह आज की भोगवादी मनोवृत्ति को उजागर कर देती है जहां रिश्ते बेमानी हैं। 'घृणा की भीख' इंसानी मनोवृत्ति को उजागर करती है जहां प्यार में इतनी शक्ति है कि वह घृणा को भी प्यार में बदल देता है। कर्नल को अपने बेटे गौरव और उसकी प्रेमिका स्मिता के आगे अपनी घृणा को ही भीख में दे देना पड़ता है- वह घृणा जो पिस्तौल में छिपी है। 'प्रदर्शन' में बेबस युवती की कथा है जो प्रदर्शनी की वस्तु बनकर रह गई है। पर जब वह दृढ़ कदम उठाती है तो उसे राह मिल जाती है। ऐसा ही 'सीमा तुम्हारा फोन' की सीमा के साथ भी होता

है।

'धर्म के नाम पर' ऐसे वातावरण को चित्रित करती है जहां धर्म के नाम का इस्तेमाल कर कुछ भी किया जा सकता है, यहां तक कि दफ्तर के समय में धर्म के नाम पर झुक करने का मौका खोज लिया जाता है। धर्म के नाम पर देश में कुछ भी किया जा सकता है। 'हाथ की लकीर' की गुंजन की कथा भी विवाह योग्य युवती की कथा है जिसे मां-बाप जबरन किसी भी 'उपयुक्त' पात्र के साथ बांध देने पर आमादा हैं। जहां औरत जानवर से भी कहीं अधिक मजबूर है। 'कतारों का जीवन' महानगरों की बेतरती से जिंदगी जोने की मजबूरी को उजागर करती है। जबकि 'परकटी' और 'सर्कस का शेर' में पुरुष द्वारा शोषित किंतु शोषण के खिलाफ उठ खड़ी होने वाली वीना (पाठक) और लिजलिजे पति से दुखी व अपने स्त्रीपन को खोती शौरी की अंतर्कथा है, जिसे बाहर से समझ पाना संभव नहीं है।

महताब की भाषा-शैली आम जीवन से अलग नहीं है, न इनमें कहीं कोई चमत्कार ही है बल्कि हमारे आसपास के जीवन के चित्रों को उकेरा गया है। इनके पात्र कभी भी असामान्य नहीं हैं, बल्कि जिंदगी से जुड़े हुए हैं। संग्रह की अधिकांश कहानियों की खूबी है कि शहर की कामकाजी और घरेलू औरत की जिंदगी का ताना-बाना इनमें है, जो कहीं न कहीं रोजमर्रा की घटित होने वाली घटनाओं से कहीं अलग नहीं है। आम भारतीय महिला इन कहानियों में सामने आती है जो बोलू होने का दिखावा भर तो कर सकती है पर बोलू नहीं। पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति की चकाचौंध से इस संग्रह की कहानियां बहुत दूर हैं।

महताब की कहानियां नई उमीद जगाती हैं। उनका कहना है कि '... कहानी जीवन का एक अंग या टुकड़ा होती है, पूरा जीवन नहीं होती। क्षण की बात क्षण में ही समाप्त हो जानी चाहिए, उपन्यास नहीं बन जानी चाहिए।' इससे ऐसा लगता है कि वह अपने पात्रों को कई बार फैसला ले पाने से पहले ही पीछे कदम बढ़ाने के लिए मजबूर कर देते हैं। आज की नारी क्या वास्तव में इतनी कमजोर है या कमजोर बने रहने के लिए विवश है-यह सोचने के लिए कहानियां मजबूर करती हैं।

—देवेंद्र उपाध्याय

अपनत्व और करुणा की कविताएं

संच पूछो तो : भगवत रावत; राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली; मूल्य : 95 रुपये

सफल आदमी के चेहरे पर

उसकी उम्र की जगह लिखा होता है

सफल आदमी

सफल आदमी में इतनी प्रतिभा होती है

कि वह चाहता तो जो वह है

उसके अलावा/ कुछ और भी हो सकता था

लेकिन वह ऐसा कुछ भी नहीं होता

वह केवल एक सफल आदमी होता है

सफल आदमी के बारे में

हम सब कुछ जानते हैं

केवल उसका दुख नहीं जान पाते।

('सफल आदमी' से)

यह भगवत रावत के काव्य-संग्रह सच पूछो तो की एक कविता का अंश है। यश और वैभव की अदम्य वासनाओं के दौर में कामयाब लोगों के दिलों की पड़ताल करती यह कविता इस बात का पता देती है कि कवि अपने समय को लेकर बेचैन है। विष्णु खरे ने इस किताब में फ्लैप लिखा है- 'आदमी को लेकर एक निःसंकोच अपनापन और करुणा भगवत रावत की कविता के केंद्र में है इसीलिए जब वह याद दिलाते हैं कि इस समय दुनिया को ढेर सारी करुणा चाहिए तो वह भावुक नहीं हो रहे होते हैं बल्कि निर्वैयक्तिकता, तटस्थता आदि के मूलतः मानव-विरोधी मूल्यों के खिलाफ एक अमोघ नकार दर्ज करते हैं।'

सभी जानते हैं

सभ्यता सभ्य लोगों से जानी जाती है

और सभ्य लोग पिछड़े हुए लोगों से जाने जाते हैं

इस तरह सभ्यता और संस्कृति के हित में दोनों को अलग-अलग बनाए रखना

देश की विवशता है

('सभ्यता और संस्कृति' से)

प्रकृति के साथ मनुष्य के बदलते संबंधों को वह पर्यावरण की चिंता से कहीं आगे एक

चेतावनी की तरह देखते हैं-

अब ऐसे मौसम में

भले ही यह पागलपन समझा जाए

पर यह सच है

कि पेड़ों के पास नहीं बची है आक्सीजन

वे धरती पर चेतावनी की तरह खड़े हैं

और अब इन दिनों

कोई नहीं सुनता पेड़ों की आवाज।

('पेड़ों की आवाज' से)

'सोच रही है गंगाबाई', 'कचरा बीनने वाली लड़कियाँ', 'अतिथि कथा', और 'मानव संग्रहालय' में निम्न सामाजिक स्तर पर मौजूद जीवन के चित्र और उनकी विडंबनाएं हैं। अधिकांश कविताएं हाल ही के बरसों में पूर्वी यूरोप और सोवियत संघ में आए बदलावों के साथ मन की दुनिया में हुई टूट-फूट का पता देती हैं-

मित्रों

आत्म-विगलन और आत्ममुग्धता के बीच

घोंघे : अजित कुमार; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली; पृष्ठ संख्या : 60, मूल्य : 25 रुपये

अजित कुमार का काव्य-संग्रह घोंघे कवि की इस जिज्ञासा का खुलासा करने की कोशिश है कि मनुष्य के प्रति मनुष्य की ही भला ऐसी वितृष्णा क्यों? क्राउन आकार के साठ पृष्ठों में प्रकाशित इस काव्य-संग्रह में कुल पचपन कविताएं हैं। छोटी-छोटी कई कविताओं में घोंघे को प्रतीक चुनकर मध्यवर्गीय जीवन की पराजयों और क्षुद्रताओं को रेखांकित किया गया है। अनुभूतियों की विविधताओं की पड़ताल करने पर पाठक निराश तो होंगे किंतु एक ही बिंब में जीवन की कई विसंगतियों को देख लेना कवि की साहसी रचनाशीलता को सामने लाता है।

नदियों-नालों के किनारे चट्टानों पर जीवित

मैंने तो कविता के मार्फत

कुछ ऐसे दृश्यों की तरफ इशारा किया

जो बेहद मनोहारी नाटकीय दुर्घटनाएं हैं

उन दृश्यों की तो बात कर ही नहीं रहा मैं

और आप भी देखकर उन्हें करेंगे क्या

वे ढेर सारे दृश्य

जहां से हर समय आती ही रहती हैं आवाजें

बचाओ / बचाओ / बचाओ!

('डूबते जहाज' से)

रोशनी कम हो गई है मेरी आंखों की

कोई देखकर बताए

कोई आग का दरिया पार करता हुआ

आ रहा है।

('इन दिनों' से)

विष्णु खरे फ्लैप में लिखते हैं कि भगवत रावत में कोई अतिमानवीय सुनियोजित, यंत्रचालित आशावाद तथा आत्माभिन्नता भी नहीं है। कई कविताओं में पराजय की अकातर स्वीकृति है, अपनी और अपने जैसों की भूल, गलतियों, खामियों और गफलतों का इकबाल भी है। लेकिन इनमें आत्मदया और विलाप नहीं है बल्कि उस तरह का मूल्यांकन है, जो हर मुकाबले के बाद शाम को शिविरों में किया जाता है ताकि अगली सुबह फिर आगे बढ़ा जा सके।

घोंघों की प्रवृत्तियों और जीवित रहने की जद्दोजहद को महानगरीय जीवन में संघर्षरत मनुष्यों की जिजीविषा और अंतर्विरोधों के संदर्भ से जोड़कर कवि ने 'भीतर' शीर्षक कविता में कुछ इस तरह देखा है-

सख्त, ठोस, बिल्कुल खिंचा हुआ/ चेहरा/ जान लेना- उसके भीतर/ धरधर कांपता/ कातर प्राण है।

ऐसा नहीं है कि घोंघे में कवि ने हमेशा ऐसा ही कुछ पाया है जो त्याग्य है और नफरत योग्य। 'अंतर्विरोध' शीर्षक कविता देखिए-

घोंघा है कीड़ा एक/ गिजगिजा, गंदा, गीला, धिनौना

शंख है उसी का घर-शुभ, सुदृढ़, मंगलमय,
पवित्र

जीवन नहीं/ जहां परस्पर विरोध।

लंबे समय से दिल्ली में रहते हुए
किरोड़ीमल कालेज में अध्यापनरत कवि ने अपना
प्रतिबिंब अनायास ही 'अनायास' शीर्षक कविता
में देखा है। 'प्रभुता' कविता में वह घोंघे में

हंसो ताकि बात गंभीर न रह जाए!

मेरे इस देश में : गोविंद व्यास; राजपाल एंड संस, दिल्ली; मूल्य : 70 रुपये

हास्य-व्यंग्य के लोकप्रिय मंचीय कवि गोविंद
व्यास का काव्य संग्रह मेरे इस देश में मूलतः
व्यंग्य रचनाओं का संकलन है। कुछ गजलें और
मुक्त छंद की 'गंभीर' कविताएं भी हैं। मंच
का दबाव उन्हें गंभीर होने की कोशिश में बार-बार
फिकरेबाजी के आसपास ला पटकता है। देखिए
'बंदर व्यथा'—

जब जब भी इतिहास / अपने आप को दुहराता
है / बिल्लियों की लड़ाई का फायदा
केवल बंदर उठाता है।

किताब की प्रस्तावना मनोहर श्याम जोशी
ने लिखी है और आशीर्वचन के दो शब्द
अटलबिहारी वाजपेयी ने लिखे हैं। असावधानी
से हंसी-मजाक करने में हम जैसे अपने अवचेतन
में पैठे संस्कारों का उद्घाटन कर देते हैं। कई
बार 'चोर-चमार' कहकर हम घोर जातिवादी
बरामद होते हैं, जहां हमारा जाति बोध एक
दबे कुचले जाति समूह का श्रेणीकरण चोर के
साथ कर रहा होता है। गोविंद व्यास की कविता
'क्योंकि हम जनता है' में तालियां बजवाने की
हड़बड़ी भी वैसी ही गड़बड़ी पैदा कर देती है
जिसे धूमिल कहते हैं कि 'निष्ठा का तुक विष्ठा
से मिलाया जा रहा है'—

हमारे पास बूढ़ा इतिहास

हमारे पास काला भविष्य है

हमारे पास कीचड़ में सनी हुई स्वतंत्रता है
आस्तोनी से लिपटा हुआ पड़ोसी देश है
हमारे पास जिंदगी भर का क्लेश है
क्योंकि हम जनता हैं।

जिंदगी भर का क्लेश अगर एक सच्चाई
है तो रोज-रोज लड़ी जाने वाली छोटी-छोटी

वज्र-से कठोर और फूल-से कोमल प्रभु की
छवि भी देखते हैं।

यदि यह अनुभव सिद्ध है कि
अति-आत्मविगलन अति-आत्ममुग्धता का ही
दूसरा रूप है तो घोंघे कविता संग्रह कवि की
इसी सच्चाई को शायद उनकी सरलता के कारण
उजागर कर गया है।

लड़ाइयां उसका नकार भी है। सच्चाई के इस
दूसरे पहलू पर विश्वास न हो तो राजनीतिक
फिकरेबाजी कैसे एक रचनाकार के स्वतंत्र और
आलोचक नजरिए को विकृत करती है— यह
इसी कविता में पड़ोसी देश को आस्तीन का
सांप बताने में जाहिर होता है। अटल बिहारी
वाजपेयी अगर कवि का कंधा थपथपा रहे हैं
तो इसमें बेजा क्या है। एक गजल का पहला
ही शेर देखिए—

बस्ती बस्ती आग लगी है आओ जंगल दूढ़ें हम
जिस दलदल में सिर्फ कमल हो, ऐसी दलदल
दूढ़ें हम !

कवि शायद दलदल न मिल पाने के कारण
कमल वाले दल से ही संतोष कर चुका है।
'मेरी महबूबा' शीर्षक रचना में वह इस दल
को दूर दृष्टि वाला स्वीकार करते हैं—

आप कहेंगे, ये तो बेवफाई है / पर सच मानिए
उसकी दूर दृष्टि भाजपाई है

उपन्यास

लोकभाषा में लोकमानस की रचना

सूरज सबका है : विद्यासागर नौटियाल; राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली-2;
पृष्ठ संख्या : 140; मूल्य : 125 रुपये

सूरज सबका है विद्यासागर नौटियाल द्वारा
ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लोकभाषा में रचित
लोकमानस का उपन्यास है, जिसमें टिहरी
गढ़वाल की इतिहास-गाथाएं ही नहीं,
लोककथाएं भी हैं। प्रायः इतिहास पर आधारित
साहित्यिक कृतियों में पात्रों, घटनाओं, तथ्यों की

लोकप्रिय बने रहने का दबाव कवि को
लोक मन से टकराने के झंझट से दूर रखता है
और जो कुछ लोक में व्याप्त है उन्हीं उपकरणों
के सहारे मंचीय कवि अपने छंद कौशल पर
तालियां बजवाते हैं। 'मेरे इस देश में' में चार-चार
जूते देश-समाज-संस्कृति-जनता और इतिहास
को लगाए गए हैं और कविताएं पढ़कर पाठक
एक वैसी ही हंसी के साथ सब कुछ भूल जाता
है जिसे रघुवीर सहाय एक कविता में कहते हैं
कि 'हंसो' एक गंभीर बात कहने के बाद हंसो
ताकि किसी भी बात का कोई अर्थ न रह जाए।'।
ऐसी ही एक गंभीर बात 'व्यवस्था और हम'
में कही गई है जो अन्यथा कवि को किसी
आत्मसंघर्ष में ले जाती—

एक वे हैं जो—

रोटी की जगह गोलियां खाकर मर रहे हैं

एक हम हैं जो—

सत्य को कहने में भी डर रहे हैं!

'सत्य को कहने' में लोकप्रियता की
ऊंचाइयों से गुमनामी की खंदकों में फँक दिए
जाने का जोखिम है। यह वही दुविधा है जिसे
कवि ने स्वीकार किया है। उनकी अपने बारे
में परिभाषा देखिए—

सुविधा की खातिर टूटते हैं राजपुरुष'
दुविधा में टूटे वह कलाकार होता है। राजपुरुषों
से कंधे थपथपाए जाने पर जो सुविधाएं मिलती
हैं कवि उन्हीं के चक्करों में अपनी लेखकीय
भूमिका से कन्नी काट गया है।

—इरफ़ान

छोटा आदमी, जो चाहे नेपाली आधिपत्य (1804) के बाद दास बनकर हरिद्वार की मंडी में बिकने वाला हो या आजाद भारत में 'सोनी' गांव की उपेक्षित बड़ी दादी की शक्ल में मौत का मुंजिर हो उपन्यास का आरंभ और अंत टिहरी गढ़वाल की बदहाल प्रजा के इतिहास से होता है, जो प्राकृतिक संपदाओं से युक्त इस क्षेत्र विशेष की गुलामी, बदहाली, विवशता ही नहीं, उसकी वीरता, जीवट, निष्कपटता की भी दास्तान है।

वीरू भड़ को देश, बावन गढ़ को देश
अप्पू गढ़ को जवान, धन रे काफू चौहान

काटी भी सिर की झुकी, कनु रै होलो
स्वाभीमान।

गढ़वाल, काफू चौहान और माधो सिंह भंडारी सरीखे भड़ों की निरछल वीरता की कहानियां अपने अतीत में संजोए हुए हैं लेखक ने इन लोक-कथाओं को गढ़वाल के इतिहास से जोड़ने का प्रयास किया है उपन्यास वस्तुतः टिहरी गढ़वाल के शासकों का नहीं, शोषितों का इतिहास है, जो सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेशों का एक सम्यक् शब्द चित्र है लेकिन उपन्यास सिर्फ अतीत ही नहीं, भविष्य की भी तस्वीर गढ़ता है। सात वर्ष की छुन्ना अतीत के जर्जर मकान की सीढ़ियां नापती देहली के पार के भविष्य की ओर झांकने को आतुर है। इस उपन्यास से गुजरते हुए एक खास बात की ओर ध्यान जाता है—मुगल सल्तनत के मनसबदार नजावत खां और रानी कर्णवती के

बीच युद्ध-संधि की ऐतिहासिक गाथा को लेखक ने भूख से बिलबिलाते मुगल सैनिकों के व्यक्तिगत अहसासों तक पहुंचाया है और भूख तथा रोटी के रिरते को सूक्ष्मता से शब्दांकित किया है

आंचलिक कृतियों की श्रेणी में रखा जा सकने वाला यह ऐतिहासिक उपन्यास भाषा की दृष्टि से सरल तथा सपाट होने के बावजूद लालित्यपूर्ण है, जो अनेक स्थानों पर काव्यात्मकता का बोध कराता है अत्यंत ही छोटे-छोटे वाक्यों में की गई भाषा की बुनावट तथा कथानक की मौलिकता इस कृति को पूर्ववर्ती ऐतिहासिक उपन्यासों से निश्चय ही अलग पहचान देती है।

—बुभुकार मय्यक

प्राप्ति सूचना

1. मरुस्थल तथा अन्य कहानियां (कहानी-संग्रह); जयशंकर; प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.; 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002; मूल्य : 100 रुपये
2. बंद घर के किवाड़ (कहानी-संग्रह); मनोरमा महापात्र, अनुवाद : डा. शंकरलाल पुरोहित, डा. अजय कुमार पटनायक; प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस; 2/35, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; मूल्य : 120 रुपये
3. बूंद (कहानी-संग्रह); मंजुल भगत; प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003; मूल्य : 95 रुपये
4. आंधियों के खिलाफ (कविता-संग्रह); रामकुमार आत्रेय; पूनम प्रकाशन, 6-बी, कौशिकपुरी, पुराना सीलमपुर (पूर्व); दिल्ली-110031; मूल्य : 65 रुपये
5. निन्यानवे (उपन्यास); रवींद्र वर्मा; प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; मूल्य : 125 रुपये
6. जो मन टूटा अपना (असमिया उपन्यास); शीलभद्रा अनुवाद : महेंद्रनाथ दुबे; प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003; मूल्य : 155 रुपये
7. अमृत कुंभ (कहानी-संग्रह); ओमप्रकाश मेहरा; प्रकाशक : शुभकामना कला निकेतन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032; मूल्य : 60 रुपये
8. अनातीत (उपन्यास); वीरेंद्र जैन; प्रकाशक : यात्री प्रकाशन, बी-131, सादतपुर, दिल्ली-110094; मूल्य : 60 रुपये

9. समकालीन कविता के बदलते सरोकार (समालोचना); संपादक : डा. रणजीत, डा. सुधा रणजीत; प्रकाशक : अमन प्रकाशन, 104-ए/118, रामबाग, कानपुर-208012; मूल्य : 110 रुपये
10. बूंद-बूंद की प्यास (गीत-संग्रह); डा. वीरेंद्र; प्रकाशक : आशीष प्रकाशन, 1/5786, बलबीर नगर चौक, शाहदरा, दिल्ली-110032; मूल्य : 200 रुपये
11. घर से समुद्र तक (कविता-संग्रह); डा. नरसिंह श्रीवास्तव; प्रकाशन, 236, दाउदपुर, गोरखपुर; मूल्य : 80 रुपये
12. जलसा (कहानी-संग्रह); अभय; प्रकाशक : अनामिका प्रकाशन, 105, नया बैरहना, इलाहाबाद-3; मूल्य : 95 रुपये
13. जोकरनामा (व्यंग्य); रत्नलाल शर्मा; प्रकाशक : निर्माण प्रकाशन; 19/ए, रामनगर, लोनी रोड, शाहदरा; दिल्ली-110032; मूल्य : 100 रुपये
14. लंदन के वे दिन (यात्रा वृत्तंत); डा. राजेंद्र मिलन; प्रकाशक : समानंतर, मिलन मंजरी, आजाद नगर, खंदारी, आगरा-282002; मूल्य : 80 रुपये
15. कोख (विज्ञान कथाएं); देवेंद्र मेवाड़ी; प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2/35, अंसारी रोड, नई दिल्ली-2; मूल्य 75 रुपये
16. आरक्षण (कहानी संग्रह); आर.पी. मित्तल; प्रकाशक : एम.एल. प्रकाशन, 1570 बी, दरियाबाद, इलाहाबाद; मूल्य : 50 रुपये
17. कहीं जरा सा... (कहानी-संग्रह); मुकेश पोपली; प्रकाशक : नेगार प्रकाशन, 3 च-14, पवन पुरी, बीकानेर (राजस्थान)-334003; मूल्य : 120 रुपये

शब्द कोई जादुई करिश्मा नहीं !

‘समय, समाज और शब्द’ शीर्षक लेख को कई बार पढ़ा। लेखक ने समय और समाज के बदलते स्वरूप के साथ ‘शब्द’ के बदलते और क्षीण होते अर्थ-महत्व के प्रति गंभीर चिंता व्यक्त की है। यहां लेखक का ध्यान ‘शब्दार्थ’ की गंभीरता के निर्वाह के प्रति आए दिन होती रही मनमानी की ओर ही अधिक है, जिसका खतरा ‘शब्द’ और ‘अर्थ’ की महिमा-गरिमा के सर्वथा लुप्त हो जाने की संभावनाओं में अभिप्रेत है। किंतु, यहां इस विषय पर लेखक की चिंता चाहे जितनी भी गंभीर हो, ऐसी कोई बात वास्तव में नहीं है। यदि हम मानव, समाज और भाषा के विकास की परस्पर संबद्ध प्रक्रिया का अध्ययन करें तो भाषा के शब्द प्रयोग की स्वाभाविक विकास-यात्रा को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। हम इस विषय को इस रूप में देखें कि मानव, अपनी सभ्यता की विकास-यात्रा में जब ‘सामाजिक’ बना, तब अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसने भोजन, आवास, अग्नि, जल, रक्षा साधनों की तरह ही ‘भाषा’ का भी आविष्कार किया। इस तरह ‘भाषा’ सामाजिक मानव की विकास-प्रक्रिया की ही एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। भाषा के ही मौखिक और लिखित दो रूप प्रचलित हुए। भाषा का आदिम रूप मौखिक ध्वनियों को स्थायी और रूढ़ रूप देने की कला का आविष्कार भी सामाजिक मानव के सुदीर्घ जीवन में ही हुआ। भाषा की मूल इकाई ध्वनि ही थी। ‘ध्वनि’ से ही ‘शब्द’ बने और ध्वनि-शब्द संयुक्त सार्यक प्रयोग की संज्ञा ‘भाषा’ कहलाई।

अध्ययन से पता चलता है कि भाषा के आविष्कार के प्रारंभिक अनेक वर्षों में सामाजिक मानव की सर्वाधिक शक्ति एकार्थक, निश्चयात्मक और रूढ़ शब्दों के निर्माण में ही लगी होगी। घर-गृहस्थी, खेती-बाड़ी, आखेट, युद्ध और प्रकृति-परिवेश से अपने संबंधों को ‘पहचान’ का निश्चयात्मक रूप देने के लिए प्रारंभ में अधिसंख्य एकार्थक संज्ञा (नाम) शब्द बनाए गए। इसका प्रमाण आज भी लोकभाषा, जनभाषा में प्रचलित नामों के अध्ययन से मिलता है। यह सुनिश्चित करना निश्चय ही कठिन है कि ‘भाषा’ में मनोभाव व्यंजक शब्दों का सर्वप्रथम प्रयोग कब और कहाँ किस मानव समूह द्वारा किया गया। किंतु यह भी स्पष्ट रूप से ज्ञात है कि व्यक्ति, स्थान, वस्तु आदि की एकरूपता को देखते हुए उसकी अलग-अलग पहचान के द्वारा संबंध स्थापन के लिए अलग-अलग नाम-शब्दों का आविष्कार किया गया। इस तरह सामाजिक मानव के व्यवहार में दीर्घकाल तक एकार्थक शब्दों का ही बहुतायत से प्रयोग होता रहा। आगे चलकर एकार्थक शब्दों के बाद अनेकार्थक शब्द भी आविष्कृत होकर व्यवहार में आए और भाषा के शब्द एकार्थक और अनेकार्थक दो तरह के हुए। शब्द ही भाषा की मूल संपदा है। सामाजिक मानव के अनेकविध उत्कर्षों में भाषा की भी महत्वपूर्ण देन है। किंतु, इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि भाषा में एकार्थक, निश्चयात्मक, प्रामाणिक रूढ़ शब्द-प्रयोग उसके अपकर्ष के परिचायक हैं। यह कथन भी ठीक

नहीं होगा कि सभ्यता के मौजूदा दौर में ‘भाषा’ के ‘शब्द’ कहीं भी संकटग्रस्त हैं। वस्तुतः ‘समय’ और ‘समाज’ के प्रत्येक विकास-युग की अपनी समस्याएं, मांग और प्राथमिकताएं होती हैं। मानव की प्रगति-अगति में सर्वत्र भाषा उसके साथ होती है। भाषा में सामाजिक मानव की आवश्यकताओं के अनुरूप ही परिवर्तन, सुधार और परिष्कार भी होते रहते हैं। इसका प्रमाण न केवल स्थानीय अथवा लोकभाषाओं में; बल्कि विश्वस्तर पर सदियों से प्रचलित विविध भाषाओं की विकास-यात्रा में देखा जा सकता है।

सामाजिक पुनर्निर्माण में भाषा की महती ऐतिहासिक भूमिका रही है। इस भूमिका में ही ‘भाषा’ का विकास प्रवाहवत काल के संग होता है। भाषा की यह यात्रा जितनी ही सुखद, रोमांचक है, उतनी ही गंभीर और विचित्र भी। ‘शब्द’ के जन्म, विकास और अंत की कथा जहां अनंत है, वहीं ‘शब्द’ के अभिधार्य, लक्ष्यार्थ, व्यंग्यार्थ, प्रतीकार्य-विकास, अर्थ-परिवर्तन और इस का व्यापक अध्ययन भी भाषाशास्त्रियों ने किया है। कौन-सा ‘शब्द’ किस अर्थ में सर्वप्रथम प्रयुक्त हुआ था और काल-प्रवाह में आज उसका क्या रूप और अर्थ हो गया है, इसके अनेक प्रमाण हैं। हिंदी भाषा तो अपनी पाचनशीलता की अपूर्व शक्ति के कारण नित्य ही नया रूप ले रही है। जिस तरह मनुष्य और उसके द्वारा निर्मित समाज विकासोन्मुख है, उसी तरह उसी के साथ उसकी भाषा भी है। मनुष्य की भाषा मनुष्य के विकास का सार्यक साधन है। अस्तु, भाषा के अंतर्गत ‘शब्द’ के बदलते अर्थ-प्रयोग के प्रति चिंतित होने के बजाय उसे विकास-प्रक्रिया में ही देखना अच्छा है। सदाशय चिंतक शब्दार्थ सौष्ठव

की रक्षा के प्रति चाहे जितना भी उदार, नम्र और चिंतित क्यों न हों, परिवर्तनशील काल मनुष्य और समाज के अनुरूप उसके स्वाभाविक परिवर्तन को स्वीकार करना ही श्रेयस्कर होगा। वस्तुतः लेखक ने ‘शब्द’ का अध्ययन ‘समाज’ और ‘समय’ के बीच तो किया है, किंतु उसे यही स्पष्ट नहीं है कि ‘शब्द’ भी ‘भाषा’ की इकाई के रूप में ही अर्थवान बनता है। और ‘भाषा’ का जीवन पूरी तरह ‘समय’ और ‘समाज’-निर्भर है। विकासशील ‘समय’ और ‘समाज’ में ‘भाषा’ (शब्द) स्थिर नहीं रह सकती। वह परिवर्तित होगी ही। सभ्यता के आदिम वाचिक भाषा-परंपरा के युग में जहां शब्द पर अज्ञानांधकार का आवरण था, वहीं, विज्ञान और प्रौद्योगिकी की लिखित भाषिक परंपरा पर प्रकाश का अनावरण। भाषा के लिए दोनों ही स्थितियां स्वागत योग्य थीं। लेखक एक ओर ‘शब्द’ को ‘समय’ और ‘समाज’ के बीच रखकर देखना चाहता है, वहीं उन दोनों की नैसर्गिक विकास प्रक्रियाओं की अनिवार्य स्वाभाविक शक्तों से भी अछूता रखना चाहता है। लेखक का यह वैचारिक अंतर्विरोध पूरे निबंध को संदेश-विमुख सूक्ति-सफूटों का खंड-खंड विस्तार बना देता है।

यह भाषा (शब्द) के नहीं, मनुष्य के हाथों में है कि वह विश्वमैत्री, विश्वबंधुत्व और विश्वमानवता को संबोधित करना चाहता है, या नहीं। यदि मनुष्य विश्व को संबोधित करना चाहेगा, तभी भाषा में वह ‘शक्ति’ (योग्यता) आएगी, अन्यथा नहीं। भाषा (शब्द) तो मनुष्य की सृष्टि है, कोई जादुई करिश्मा नहीं।

—रामस्वार्थ ठाकुर, मुजफ्फरपुर

MORE JOB OPPORTUNITIES IN YOUR WEEKLY JOURNAL



Employment News/Rozgar Samachar brings you more job/job improvement opportunities in the Centre/State Governments, Public Sector Undertakings, Army/Air Force/Navy/Police, UPSC, SSC, Banks, Railways and provides you up-to-date information to prepare for competitive examinations.

Half a million people in the country repose their faith in
Employment News/Rozgar Samachar
 published by the **Publications Division,**
Ministry of Information & Broadcasting, Government of India.



For copies please contact your Newspaper Agent or Write to The Assistant Editor
 (Circulation), Employment News, R.K. Puram, East Block-IV, Level-V,
 New Delhi-110 066. Tel.No.6107405

Employment News/ Rozgar Samachar

डाक तार पंजीयन सं. (डी.एल.) 12035/99 बिना पूर्व भुगतान के डी.पी.एस.ओ., दिल्ली में पोस्ट करने के लिए लाइसेंस
यू (डी.एन.)- 49/99 प्राप्त दिल्ली डाक आर.एन. 701/57
Postal Rég. No. (DL)/12035/99 Delhi Postal
Licenced U (DN)-49/99 to post without pre-payment at DPSO, Delhi R.N. 701/57

